Chap-6

षष्ठ अध्याय : हिन्दी रीति-काव्य की प्रवृत्तियाँ और लखपति सिंह का काव्य

षष्ठ अध्याय

हिन्दी रीति-काव्य की प्रवृत्तियाँ और लखपतिसिंह का काव्य

रीति-काव्य की प्रवृत्तियाँ :

हिन्दी का रीतिकालीन काव्य प्रधानतया राजदरबारों के वातावरण में निर्मित हुआ । इस युग के साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियों का यही आधार था । अतः रीतिकाव्य के वर्ण्यविषयों में राज्य विलास, राजप्रशंसा, दरबारी-कला-विनोद, मुग़लकालीन वैभव, नखशिख, ऋतुवर्णन, अष्टयाम, नायिकाभेद, राधा और कृष्ण के बहाने ऐहिक शृंगार का वर्णन आदि प्रमुख थे ।[१] इसलिये स्वाभाविक ही अलंकृत अर्थात् शब्द एवं अर्थ-चमत्कार एवं उक्ति-वैचित्र्य से युक्त काव्य-रचना को इस काल के कवियों ने अधिक सचेत और जागरूक हो अपनाया । रीतिकाल के अधिकांश साहित्य की यह प्रधान प्रवृत्ति बन गई थी । इन सब प्रवृत्तियों में शृंगार रस ही प्रधान था ।[२] शृंगारिकता की प्रवृत्ति इतनी व्यापक हो गई थी कि इस काल की इतर रचनाओं पर भी इसका प्रभाव पड़ गया था ।[३] जैसे भक्ति-विषयक रचना आध्यात्मिकता से प्रेरित न होकर संस्कार-रूप में लिखी जाती थी और वह भी शृंगार संवलित थी ।[४] इस तथ्य को आचार्य भिखारीदास ने स्पष्टतः इन शब्दों में अभिव्यक्त कर दिया है :

" आगे के कवि रीझि हैं तौ कबिताई न तु
राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है । "

---

१ "हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास ", षष्ठ भाग, पृ० १६१ ।

२ वही, पृ० १६१

३ (अ) "हिन्दी-रीति-साहित्य", डॉ० भगीरथ मिश्र, पृ० १५
(आ) "रीति-काव्य की भूमिका ", डॉ० नगेन्द्र, पृ० १३८

४ " हिन्दी-रीति-साहित्य", पृ० १५ और १३२

तात्पर्य यह है कि शृंगारिकता हिन्दी के रीति-काव्य की व्यावर्तक प्रवृत्ति है । रीति-काव्य की शृंगारिकता का स्वरूप-विश्लेषण करते हुए डॉ० नगेन्द्र ने स्पष्ट किया है कि उसका मूल रसिकता में है, प्रेम में नहीं ।[५] इसीलिए रीतिकालीन शृंगार-वर्णन ऐन्द्रिय और उपभोग-प्रधान है । प्रेम की गंभीरता और तीव्रता के स्थान पर इस काल के रसिक कवियों की शृंगारिकता में तरलता है और परिणामतः उसमें एकनिष्ठता का अभाव है । रीतिकालीन शृंगारिकता के मूल में तात्कालिक सामाजिक परिस्थिति एवं साहित्यिक परम्परा को कारणीभूत माना गया है ।[६] शृंगारिकता के उक्त स्वरूप का प्रभाव यह पड़ा कि रीतिकालीन रसिक कवियों ने शृंगार के दोनों पक्षों का समुचित वर्णन नहीं किया । अधिकतर उनकी रुचि संयोग-पक्ष में ही रमी । यदि उन्हीं ने शृंगार के वियोग-पक्ष का वर्णन किया भी है तो वह गंभीरता से रहित अनुभूति-शून्य, ऊहात्मक और अतिशयोक्तिपूर्ण बन गया है ।[७] इसका कारण यह है कि यह वियोग-वर्णन स्वानुभूति-शून्य होकर मात्र परिपाटी का निर्वाह करने के निमित्त ही हुआ है । रीतिकाल के कुछ कवियों को छोड़कर शेष सभी के विषय में यह कथन सत्य सिद्ध होता है ।

शृंगारिकता के अतिरिक्त आचार्यत्व अर्थात् रीति-ग्रन्थ रचने की प्रवृत्ति इस काल के कवियों की दूसरी प्रधान प्रवृत्ति है । जैसा कि हम अभी देख आये हैं ऐसे आचार्य-कवियों ने भी शृंगार का रसराजत्व एक स्वर से माना है । रीति-साहित्य के तत्त्वज्ञों ने यह स्पष्ट किया है कि इन आचार्य माने जाने वाले कवियों ने शास्त्रीय-विचार-विमर्श के लिये रीति-ग्रन्थों का निर्माण नहीं किया, परंतु

oooooooo

५ " रीति-काव्य की भूमिका", डॉ० नगेन्द्र, पृ० १६३

६ वही, पृ० १५८

७ " देव और उनकी कविता ", डॉ० नगेन्द्र, पृ० १०८

अपनी कवित्वशक्ति का प्रदर्शन करने के लिये उसका अवलंब लिया ।[८] मौलिक सिद्धान्त-प्रतिपादन करना वे चाहते भी नहीं थे ।[९] लेकिन ऐसी स्थिति के होते हुए भी वास्तविक आचार्यत्व के अधिकारी कुछ कवि अवश्य हुए ।[१०] इन की सफलता या असफलता के कारण ढूंढ़ने के स्थान पर इतना ही कहना यहाँ पर्याप्त है कि रीतिकाल की प्रधान साहित्यिक प्रवृत्तियों में आचार्यत्व को भी स्थान प्राप्त हुआ । इस काल के आचार्य-कवियों ने काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों को " रीति " नाम दिया था और इसी आधार पर हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने इस काल को " रीतिकाल " की संज्ञा दी है[११] जो इस आचार्यत्व की प्रवृत्ति की सूचक है । आचार्यत्व की प्रवृत्ति का यहाँ तक प्रभाव पड़ गया था कि लक्षण-ग्रन्थ लिख कर रीति-कथन न करनेवाले अन्य कवि भी रीति-बन्धन से मुक्त नहीं थे । इस काल के प्रायः सभी कवियों का काव्य के प्रति दृष्टिकोण रीतिबद्ध हो गया था ।[१२]

इस प्रकार रीतिकाल में दो काव्य-प्रवृत्तियाँ प्रधान और व्यापक रूप में दृष्टिगत होती हैं :

१- शृंगारिकता और
२- आचार्यत्व ।

अब तक के विवेचन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ये दोनों काव्य-प्रवृत्तियाँ एक दूसरे से भिन्न न होकर एक दूसरे की सहायक और अभिन्न

---

८ " हिन्दी साहित्य का अतीत ", २, शृंगार काल, ले० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ३७७, प्रथम संस्करण, संवत् २०१७

९ " रीति-काव्य की भूमिका ", ले० डॉ० नगेन्द्र, पृ० १३४

१० वही, पृ० १३५

११ " हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास", षष्ठ भाग, पृ० २८७

१२ वही, पृ० १८०

है ।

महाराव लखपतिसिंह के अवस्थिति-काल की उक्त दो प्रधान काव्य-प्रवृत्तियाँ, उनके काव्य में भी प्रधानरूप में दिखाई पड़ती हैं । प्रस्तुत अध्याय में इन का विवेचन किया जा रहा है । पूर्व के अध्यायों में महाराव लखपतिसिंह की समग्र कृतियों का परिचय एवं उनकी विषय-वस्तु का अध्ययन प्रस्तुत किया जा चुका है । प्रसंगवशात् उसमें कृति विशेष में वर्णित भाव-सौंदर्य की अभिव्यंजनावाले कुछ छंदों के परिचय के द्वारा लखपतिसिंह की सामान्य काव्य-प्रवृत्ति का संकेत अवश्य मिल जाता है । यहाँ उक्त काव्य-प्रवृत्तियों का विश्लेषण करके उनके काव्य के भाव अथवा वस्तुपक्ष के विवेचन का प्रयत्न किया जा रहा है ।

लखपतिसिंह के काव्य के वस्तुपक्ष की प्रमुख प्रवृत्तियों का विश्लेषण करने से पहले यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि उनके काव्य की प्रेरक शक्ति राजाश्रय नहीं थी जैसा कि अन्य रीति-कवियों के लिये रही है । महाराव लखपतिसिंह स्वयं आश्रयदाता होने के कारण यह स्वाभाविक ही है कि उनकी कविता की प्रेरणा और प्रयोजन राजाश्रय नहीं हो सकता । परिणामतः उनके काव्य का स्वरूप अन्य रीतिकालीन आश्रित कवियों के काव्य से कुछ अंशों में भिन्न पड़ जाता है । राजाश्रय लखपतिसिंह के काव्य की प्रेरक शक्ति न होने के कारण आश्रयदाता को प्रसन्न करने के निमित्त उक्ति-चमत्कार एवं शब्दों की पच्चीकारी के द्वारा की गई झूठी राजप्रशंसा, शृंगार एवं राज्य-विलास का खुला चित्रण उनके काव्य की प्रवृत्ति नहीं बन सकी है ।

१- शृंगारिकता :

महाराव लखपतिसिंह की कृतियों में वर्ण्य-विषय की भिन्नता होते हुए भी शृंगारिकता की प्रवृत्ति की प्रधानता है । उनके एक ग्रंथ " लखपति भक्ति विलास " और फुटकल रचनाओं को छोड़कर सभी कृतियों में यही प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है । उनका आचार्यत्व प्रायः

शृंगारोन्मुख है और शास्त्रनिरूपक क्रम । इसी प्रकार काव्यशास्त्रेतर रचनाओं में भी शृंगारिकता की व्यापक प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है ।

शृंगार रस का स्वरूप और उसका रसराजत्व :

भरतमुनि के अनुसार " इस संसार में जो कुछ पवित्र, शुद्ध, उज्ज्वल और दर्शनीय है उसको शृंगार कहा जाता है । " [१३] "साहित्य-दर्पण " में शृंगार रस का स्वरूप स्पष्ट करते हुए आचार्य विश्वनाथ ने लिखा है कि शृंग अर्थात् काम का उद्भव — उसके आगमन का कारण शृंगार कहलाता है । परंतु इसके साथ ही, उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि उत्तम प्रकृति का कमोद्भव ही "शृंगार - रस " कहा जाता है । [१४] इस दृष्टिकोण का तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि वास्तविक जगत् में पुरुष और स्त्री की मिलनेच्छा, शारीरिक संयोग प्रायः सुखद होता है परंतु उसमें शरीरत्व की प्रधानता होने से वह दुःखद भी होता है । इसलिये वह उत्तम प्रकृति का नहीं कहा जा सकता । वह शृंगार रस नहीं कहलायेगा । शृंगार रस में भी मिलनेच्छा, शारीरिक संयोग और वियोग आदि का स्पष्ट वर्णन होता है, परंतु उसमें ऐन्द्रियता के अभाव के कारण सुखानुभूति ही होगी, वह दुखःद नहीं होगा ।

---

१३ " यत्किंचिल्लोके शुचिर्मेध्यमुज्जवलं दर्शनीयं
वा तत्सर्वं शृंगारेणोपमीयते । " — भरत नाट्य शास्त्र,
अध्याय ६

१४ शृंङ्गं हि मन्मथोद्भेदस्तदागम्न हेतुकः
उत्तम प्रकृति प्रायो रसः शृंगार इष्यते ।। "
" साहित्य-दर्पण ", पृ० ३३०, आचार्य विश्वनाथ, " हिन्दी साहित्य-दर्पण", व्याख्याकार, डॉ० सत्यव्रतसिंह, १९५७, चौखम्भा विद्याभवन, चौक वाराणसी-१

शृंगार रस के दो पक्ष हैं, संयोग और वियोग अर्थात् विप्रलम्भ । रति उसका स्थायी भाव है, जिसका अर्थ है प्रिय वस्तु के प्रति उन्मुख होने का भाव । [१५] संसार के प्राणी रति अर्थात् प्रेम-भाव से प्रकृत्या अभिभूत हैं । यही कारण है कि साहित्य में भी मनुष्य की इस मूलभूत एषणा का वर्णन आदिकाल से होता आया है । साहित्य में शृंगार रस के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों को समान महत्त्व प्रदान किया जाता है । कदाचित् संयोग और वियोग दोनों मनुष्य-हृदय की स्वाभाविक अवस्थाएँ हैं, जो एक दूसरे की विरोधी न होकर पूरक हैं । साहित्य में मनुष्य-हृदय की इन दोनों अवस्थाओं के वर्णन द्वारा शृंगार रस का सम्यक् एवं संपूर्ण चित्रण किया जाता है । शृंगार रस में मानवजीवन के इस व्यापक मनोभाव का यथार्थ एवं सम्यक् वर्णन होने के कारण ही शृंगार रस अन्य रसों की तुलना में श्रेष्ठ और रसराज माना जाता है । हिन्दी के रीतिकालीन कवि एवं आचार्यों ने शृंगाररस की इस श्रेष्ठता को सर्वमान्य किया है । [१६]

लखपतिसिंह की शृंगार-भावना :

महाराव लखपतिसिंह का अवस्थितिकाल रीति अथवा शृंगारकाल है । अपने युग के कवि-आचार्यों के स्वर में स्वर मिलाते हुए लखपतिसिंह भी, रसिक हृदयों की रुचि के अनुकूल होने से नौ रसों में शृंगार रस को श्रेष्ठ घोषित करते हैं :

" रस नव पैं सिंगार रस, सरस रसिक रुचि पाय ।
अधिकी या में नायिका, सब जन चित सुहाय ।। "
(" रस तरंग ", छंद, १२)

---

१५ " हिन्दी साहित्य कोश, " प्रथम भाग, पृ० ६६९

१६ " देव और उनकी कविता ", पृ० ८४, डॉ० नगेन्द्र

इससे यह प्रकट है कि शृंगार रस के आश्रय एवं आलम्बन विभावों में नायिका को अधिक रुचिकर कहकर कवि ने शृंगार के प्रति अपने एकांगी और निजी दृष्टिकोण को स्पष्ट कर दिया है । लखपतिसिंह ने शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सम्यक् वर्णन किया है । संयोग शृंगार में आलम्बन और उद्दीपन विभावों का वर्णन उनके उचित रंग और रूप के सौंदर्य-कथन के साथ किया गया है । नायक-नायिकाओं के मिलन, परिहास-विनोद, क्रीड़ाओं और उपभोग का वर्णन पर्याप्त मात्रा में मिलता है । वियोग-शृंगार के ~~अंस~~ अंतर्गत भी तीव्र मिलनेच्छा, पूर्वराग, मान, प्रवास और विप्रलंभ शृंगार का परंपरागत एवं उन्मुक्त वर्णन मनोज्ञ और अनुभूतिपूर्ण रीति से किया गया है ।

महाराव लखपतिसिंह की शृंगार-भावना के विषय में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि एक ओर, अपने नायिकाभेद विषयक शास्त्रीय-ग्रन्थ " रसतरंग " में उन्हों ने प्रसिद्ध और रूढ़ शास्त्रीचर्चा के अनुसार आवश्यक ऐसा शृंगार-वर्णन किया है । ऐसे परंपरागत और शास्त्रीय विषय में भी उनकी वैयक्तिक शृंगार-भावना और सौंदर्य-चेतना का परिचय मिल जाता है । दूसरी ओर, उनके अन्य ग्रन्थ जैसे " सुरतरंगिनी " और " सदाशिव-व्याह " में तद्विषयक मौलिक, कल्पनामय और सौंदर्यमंडित वर्णनों द्वारा उनकी निजी स्वच्छंद शृंगार-भावना का स्पष्ट एवं पर्याप्त परिचय प्राप्त होता है ।

इस प्रकार लखपतिसिंह की शृंगार-भावना एक ओर परंपरागत और शास्त्रीय विवेचन की है तो दूसरी ओर काव्य-चेतना से संयुक्त भी । यहाँ क्रमशः संयोग और वियोग शृंगार के उन पक्षों का विवेचन किया जा रहा है जिनके द्वारा उनकी सौंदर्य-चेतना और संयोग एवं वियोग की अनुभूति का परिचय प्राप्त होता है ।

१(अ) संयोग-वर्णन :

संयोग-वर्णन का निम्नलिखित शीर्षकों द्वारा अनुशीलन

किया जा सकता है :

अ – १ : सौंदर्य-चेतना और रूप-वर्णन ;

अ – २ : रतिक्रीड़ा ;

अ – ३ : परिहास और विनोद ;

अ – ४ : उद्दीपन – विभाव-वर्णन ।

अ-१ : सौंदर्य-चेतना और रूप-वर्णन :

महाराव लखपतिसिंह ने सुंदर अंगों के सामंजस्य का, उन पर धारण किये हुए वस्त्राभूषणादि के वर्णन द्वारा, एक ओर वस्तुगत रूप-वर्णन किया है उसके साथ ही, दूसरी ओर रूप-जन्य आनन्दानुभूति का भी वर्णन किया है । " सुरतरंगिनी " में राग-रागिनियों का रूप-वर्णन करने में लखपतिसिंह ने इस पद्धति को अपनाया है । जैसा पूर्ववर्ती विवेचन में देखा जा चुका है कि कवि ने राग भैरव को शिवरूप में कल्पित किया है । शिव को सुख देनेवाली उनकी प्रिया के चारु अंग और हास-विलास का इस प्रकार उल्लेख किया गया है :

" फटिक पीठ कैलास में बनि ठनि हास विलास ।
नग जासी सिसि मुष चपल, चारु अंग परकास ।। "
(" सुरतरंगिनी ", छं० सं० ५४४)

रागिनी बंगाली ने तापसी का रूप धारण किया है । चतुराई से वह अपने कंकनों को धीरे धीरे बजाती है, बिखरी अलकों को सटकारती है, उसके अंग अंग पर जंगली फूलों के वस्त्र सुशोभित हो रहे हैं :

" देषिपिटारी पानि दछ, लषि त्रिसूल करवांम ।
जटा मुकट सिर भस्म अंग बंगाली तपधांम ।। ५४७ ।।
चतुराई सो चोरकर कंकन कर झनकार ।
बिथुरी सुथरी अलक सिर चित चोरन परकार ।। ५४८ ।।

मनलके अंग अंग बसन में कानन फूल विचित्र ।
ललचावे लखि चित्त कौ बैराटी को चित्र ।। ५४९ ।। "
(" सुरतरंगिनी ")

रागिनी मालकौंसि ने अपने बर्पन से शीतल अंगों पर केसर और कपूर का लेपन किया है जिसे देखने को मन लुब्ध हो जाता है :

" सीतल अंग तुसार तें कुंदहार सुषसार ।
केसरि और कपूर की अंग घोरि चितहार ।।५५५।। "
(" सुरतरंगिनी ")

सुंदर अंगों के सौंदर्य से प्रभावित हो कर कवि उसकी तुलना सुवर्ण से करते हैं । सुवर्ण के पीले रंग के साथ नीले रंग का सुभग संयोग कितना प्रभावोत्पादक है :

" सोभे सोने तें सरस अंग अंग सोभा अंग ।
नीलनि चोलनि में लसे ज्यों तडि घन के संग ।। "
(" सुरतरंगिनी ", छंद संख्या ५७१)

प्रियतम के संग में विहार करनेवाली नायिका के सौंदर्यमंडित अंगों की द्युति का वर्णन करने का कवि का प्रयत्न सराहनीय है :

" प्रीतम के नित संग में कौतिग करत विहार ।
केस सुदेस सुबेस छबि सटकारे सुकुमार ।। ६०९ ।।
सरद सुधाकर पुर्न की जोती दुति सुषचार ।
कुच उतंग कंचन करस रस अनंग सुषसार ।। ६१० ।।
ईछन सीछन कंज से राजित है सु देन ।
देसकार सुषकार पीय बोलत अति मृदु बैन ।। ६११ ।।

[illegible]

चंपा संपा देह दुति पीय सों सरसे नेह ।
अधरनि लाली देखि कें अंग अंग सरस बिदेह ।। ६१२ ।।
(सुरतरंगिनी)

उपर्युक्त निर्देशों से प्रकट है कि लक्षपतिसिंह ने रूप-वर्णन में अंग प्रत्यंग के यथोचित् संनिवेश का वर्णन किया है जो कि उनकी व्यापक सौंदर्य-चेतना का द्योतक है । उचित अनुपात के बिना आभूषण, वस्त्र आदि को धारण किये सुंदर अंगोंवाली नायिका पूर्ण आकर्षक नहीं लगती । रीतिकालीन चमत्कार-पूर्ण, भव्य सौन्दर्य के प्रेमी कवि की यह दृष्टि है । उनकी यह दृष्टि इतनी व्यापक है कि राग-रागिनियों के वर्णन में भी वे उसी चेतना एवं तद्गत प्रभाव को प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं । यहाँ कतिपय उदाहरण उल्लेखनीय हैं :

" अरुन बसन अंग में लसे सोहत गोरे गात ।
भाल लाल टीको लसे अरुन नैंन सरसात ।।६१९ ।।
करकृपान उत्साह मुख तेज अनूपम रूप ।
नट कल्यानं को चित्र लखि कोंये (कांपे) थरथर भूप ।।६२० ।।
तरुनी वेस किसोर दुति चंपक हरत रसाल ।
केस वेस मखतुल दुति हरे सुमृदुता वाल ।। ६२१ ।। "
(" सुरतंरंगिनी ")

नागर-नायिका के इस चित्रण के अतिरिक्त वनश्री से अपने सूक्ष्म, गोरे अंगों को सजानेवाली नायिका भी उतनी ही सुंदर है :

" गोरे सुछम अंग अति वनकदली के मांहिं ।
हार गले सुख मन धरे त्रिवनलसे तरु छांहिं ।। ६२७ ।।
(" सुरतरंगिनी ")

इस वर्णन में निकटवर्ती प्राकृतिक सुषमा नायिका के सौन्दर्यजन्य प्रभाव को और भी मनोज्ञ बना देती है । एक अन्य वर्णन में नायिका के

सुंदर सुसज्जित मुखचंद्र से चंद्र भी लज्जित हो गया है, उसके कुंकुम टीके ने मानो श्याम घन का सौंदर्य छीन लिया है, उसके पीत दुकूलों के आगे कंचन फीका लगता है । नायिका का यह रूप वर्णन परंपरागत अलंकारों से युक्त है :

" बसन गुलाली अंग में सजे सिंगार अनूप ।
दृग बिसाल मुखचंद लखि लजे रूप सरूप ।।६३० ।।
अंग अनंग तरंग सों जगमग जोबन जोति ।
पंचम संग बनिता सरस रंगदुति भिलमिल होत ।।६३१ ।।
हे बिसाल मनिमाल उर कुंकम टीको भाल ।
छीन लई छबि साम घन तन सों सरस रसाल ।।६३२।।
राजित पीत दुकुल दुति कंचन लागत फीप (फीक) ।
जुवती संग सबिलास लखि साम साम दुति लोक ।।६३३।।
गौर बरन पटपीत तन माल मुकुट मनि लाल ।
कानन कुंडल कर कमल मित्र चित्र बंगाल ।।६३४।।
माल लसे उर सुमन की सीस मुकुट मनि देषि ।
सोभित चित्र बिचित्र यों हित चित सों हिय लेषि ।।६३५।।"
(" सुरतरंगिनी ")

ऐसे रूप-चित्रण के अंतर्गत लखपतिसिंह ने शृंगारिक प्रसाधनों तथा अलंकरणों द्वारा निर्मित प्रभाव को अंकित करने में सफलता प्राप्त की है । वस्त्रालंकरणों से सज्जित नायिका के उपर्युक्त चित्रण के उपरान्त नैसर्गिक अलंकरणों द्वारा निर्मित रूप सज्जा " बिभास रागिनी " के रूप-वर्णन में इस प्रकार प्रस्तुत की गई है --

" बने श्रवनि पुट लानि सों लोंग फूल सुम नाक ।
गात कुसुम ते मृदुल अति जेतसिरी दुति आंक ।। ६३७ ।।

तिलक भाल कर हाट को स्वर सुवेस सकास ।
पढवति सुक अत गौर तन यों बिभास परकास ।। ६३८ ।।"
(" सुरतरंगिनी ")

यहाँ एक अन्य बात भी विचारणीय है । लखपतिसिंह की दृष्टि सुंदर, भव्य आभूषणों से सुसज्जित अभिजात नारी-सौंदर्य पर ही नहीं ठिकती है परंतु ग्राम्य-नारी के सहज, स्वस्थ शारीरिक सौंदर्य का भी उन्हों ने वर्णन किया है । अहीरी रागिनी के दधि भरे हाथ, उसकी चावभरी चितवन और उसकी स्वस्थ, सुडौल देहयष्टि के रूप-सलील में कवि की सौंदर्य-दृष्टि मीन की तरह विहार करती है :

" मंथनी महि पर दधि भरे चपल मथ्यानी हाथ ।
चितवति अतिहिं चाइ सों देखत सुष मन साथ ।।६७६ ।।
जंघ जुगल छबि ऊरज लषि उपजित मनमथ आई ।
रूप सलिल में मीन सें भये नैंन अति भाई ।।६७७।।
बरत एक सुष पाइकें इहि बिधि सों सुनि मित्र ।
देषि रही री चाइ सों राग अहीरी चित्र ।।६७८ ।। "

अहीरी की तरह श्याम गूजरी का सिर पर दही की मटकी धर कर बोलना, हँसना भी कवि को अतीव मीठा लगता है :

" सुधा वचन विकसनि हसनि आनन कला निधान ।
सीस धरे मटुकी दही साम गूजरी आंनि ।।६८२ ।।"
(" सुरतरंगिनी ")

इस प्रकार लखपतिसिंह की सौंदर्य-चेतना शृंगार के आलम्बनों में नायिका के सौंदर्य को उसके बाह्य एवं आंतरिक गुणों के उचित अनुपात में देखती है । रूप और रंग से युक्त सामंजस्यपूर्ण सौंदर्य का वर्णन करके उन्होंने अपनी रूपगत शृंगार-भावना का परिचय दिया है । " सुरतरंगिनी "

के इन वर्णनों में कवि ने शास्त्र सम्मत, रूढ़ वर्णन प्रणाली को न अपना कर अपनी निजी सौंदर्य-दृष्टि का परिचय दिया है ।

" रस तरंग " लखपतिसिंह का नायिका-भेद विषयक ग्रन्थ है । उसमें भी संयोग-शृंगार के सुन्दर चित्र अंकित किये गये हैं । रीति-काल के कवियों की सौंदर्यदृष्टि रूढ़ हो गई थी । राधा-कृष्ण उनके लिये नायिका और नायक के निश्चित मानदंड हो गये थे । आचार्य कवि भिखारीदास ने " राधिका-कन्हाई सुमिरन कौ बहानौ " लिखकर इस तथ्य को लक्षित किया है । किन्तु पूर्ववर्ती विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महाराव ने स्वयं को केवल इतने तक ही सीमित नहीं रखा । इससे उनकी व्यापक काव्य-चेतना का साक्ष्य मिल जाता है । यह अवश्य है कि उन्होंने भी नायिका-भेद के विषय-निरूपण के लिये इसी राधा-कृष्ण का सूत्र स्वीकृत किया । उन्हों ने भी " रस तरंग " में राधा और कृष्ण के मिलन का वर्णन किया है :

सवैया : " श्री वृषभानुलली सुसिंगारि कैं नंदकुमार कै पासि चली ।
टीकौ जराउ कौ नीकौ लसै उर हारनि की छबि भांति भली ।
लाल लई ललना हित सौं कुचमर्दन कै करी रंगरली ।
लाषा उहां नष लागि गयौ सुमनौं दर की गुमठी की कली ।।४१ ।। "

(" रस तरंग ")

नायिका अपने को सजाती है । सिर के सुंदर केश धोकर सुखाती और सुगंधित करती है । सेज पर पान सुपारी रख कर नायक के स्वागत की तैयारियाँ करती है । गृह में दीप जलाकर उजाला करती है । द्वार पर खड़ी रहकर नायक के आगमन का रास्ता देखती है इस प्रतीति से कि लाल (नंदलाल) आयेगा, वह अपने रूपचिराग को अधिक प्रकाशित

करती है :

" भूषन भूषित अंग सबैं सिर के कच धूपि किये हैं सुबासहिं ।
सेमन पैं पांन सुपारी धरे फिनरि गेह मैं दीप जरे हैं उजासहिं ।
द्वार पैं आइ कैं ठाढी भई मग लागि रहे द्रिग ऐसे हुलासहिं ।
आवैंगे लाल नयौं मन जांनि चिराक हुवौं रनपि कीन्हौं
प्रकासहिं ।। "

(" रस तरंग " छं० सं० १८०)

नायिका की मिलनेच्छा के मनोभाव को व्यंजित करने के लिये उसकी बाह्य तैयारियों और सौंदर्य-प्रसाधनों का कवि ने सफलतापूर्वक प्रयोग किया है । रूप की दीपशिखा से सादृश्यता यहाँ उल्लेखनीय है । लखपतिसिंह ने यहाँ रूपदीप के प्रकाशित होने का वर्णन किया है । यह वर्णन परंपरा से लिया गया है । संस्कृत में कालिदास का दीप-शिखा के रूप में सौंदर्य का वर्णन प्रसिद्ध है । हिन्दी में तुलसीदास और बिहारी ने भी नायिका के सौंदर्य का ऐसा सरस वर्णन किया है ।[१६-अ] लखपतिसिंह के वर्णन में अंतर यही है कि उन्होंने नायिका के सौंदर्य-प्रसाधनों के बीच उसके शारीरिक सौंदर्य को रखकर उसका महत्व व्यंजित किया है ।

मुग्धा नायिका के एक चित्रण में ... उसको सखी सजाती है ।

ooooooo

१६-अ द्रष्टव्य :

१ " जनु विरंचि सब निज निपुनाई, विरचि विस्व कह प्रगटि देखाई ।
सुन्दरता कहुं सुन्दर करई, छवि गृह दीप सिखा जनु बरई ।।"
" रामचरितमानस ", बाल काण्ड, छं०सं० २२९, गीता प्रेस,
गोरखपुर प्रकाशन । "

२ " अंग अंग नग जग मगै दीपसिखा सी देह ।
दिया बढाएं हूं रहै बडो उजारो गेह ।। "
(" बिहारी ", मूल ग्रंथ, छं० सं० २, पृ० १८५, सं० विस्वनाथ
प्रसाद मिश्र ।)

पग में जावक लगाया जाता है, गले में सुगंधित माला पहनाई जाती है, हाथों पर मेंहदी से चित्र निकाले जाते हैं, मुख को भी सुसज्जित किया जाता है। बेनी गूँथी जाती है। इस प्रकार नायक को आकृष्ट करने के लिये मुग्धा को सजाया जाता है :

" देत है नाइनि ह्वै पग जावक चूरी भरैं भुज ह्वै चुर हेरौ ।
मालनि ह्वै पहिरावत हार सुगंध दे होय सहेलो घनेरौ ।
हाथनि चित्र करैं मेंहदी मुष पैं रचना जु रचैं ह्वै चितेरौ ।
बैनी गुहैं अपने कर सौं निसि बासर नाह भयो रहै चेरौ ।। "

(" रस तरंग ", छं० सं० १८७)

फिर भी नायक (मोहन) वशीभूत नहीं होता। मुग्धा नायिका अपनी सखी से पूछती है कि विधाता ने मेरे शरीर को छीलकर सूक्ष्म और कोमल क्यों न बनाया ? मुझे चातुर्यभरी बातचीत भी नहीं आती। मेरे स्तन उन्नत नहीं हैं और न मेरे नेत्र भी वक्र हैं। मुग्धा नायिका के हृदय की यह प्रेम व्याकुल झुंझलाहट और सरल पीड़ा आस्वाद्य है :

" कोमल मेरौ न गात कहूं विधि कीन्ही न सुछिम मो करि हां घसि ।
बोलि न जानति चातुरताई सौं हीय के चोज न जानति हौं हसि ।
भारी उरोज न बांके नहीं दृग नेह के फंदन जानति हौं फसि ।
पूछति हौं सषी बात यहैं कहि मेरे तो मोहन कैसें भये बसि ।। "

(" रसतरंग ", छंद १८८)

पद्मिनी नायिका को नायिकाओं के जात्यानुसार भेदों में श्रेष्ठ माना गया है। श्वेत वस्त्रों में सुसज्जित पद्मिनी नायिका के चेहरे पर कनक सी कांति है, उसके नयन दीर्घ हैं। ऐसी पद्मिनी नायिका की तुलना में स्वर्ग की अप्सराएँ भी कुछ नहीं हैं :

" चंद सोहै मुष जाकौ चंपक कनक रंग मृगनैनी पिकबैनी देषें सुषदाई है ।
कोकनद जैसी जोनि जल की न बूंद जहां भोजन तनक देवपूजा मनभाई है ।

बसन सपेद रुचि हंसगति सीखै जापैं लषधीर अंग अंग सोभा सरसाई है ।
अमरी अखिल वारि डारौं गुन आगर है पदम की बास या तैं पदमनि
कहाई है ।। "
(" रसतरंग " छं० २३०)

लखपति के ऐसे वर्णनों में परंपरागत उपमानों का उल्लेख मात्र मिलता है । सौंदर्यानुभूति का किंचित् भी परिचय नहीं मिलता । जैसे " उराहना " में सखी अपनी नायिका की रूप-प्रशंसा करती है :

" नाग सी बेनी औ नैंन बडे बडे है सुकचंचु सी नासिका आला ।
आजि लौं गोकुल गाउं में गोपिका तोसी न को भई रूप रसाला ।
हे सुनि बाउरी बात हियैं धरि तेरे उधारे जिन्हैं सुभ ताला ।
जा जिय सौं रसता हरि सौं हसि बोलियैं हरैं हरैं बाला ।। "
(" रसतरंग ", छं० २३९)

स्पष्ट ही लखपतिसिंह द्वारा किया गया यह वर्णन रीतिकालीन मान-दंड के अनुसार चलता है । ऐसे उदाहरणों को देखने से एक बात पर बार बार ध्यान जाता है कि जहाँ कवि परंपरागत रूढ़ वर्णन करके अपने आचार्यत्व के कर्तव्य का – शास्त्रकर्म का-निर्वाह करता है वहाँ निश्चित परिपाटी के अनुसार हुए सौन्दर्य-वर्णन में सौंदर्यानुभूति का अंश कम ही रहता है । " रसतरंग " में प्राप्त होनेवाले रूप एवं सौंदर्य के वर्णनों में यह बात खटकती है । इससे विपरीत पूर्व में किये गये विवेचन से यह स्पष्ट है कि " सुरतरंगिनी " में जहाँ उन्होंने रागिनियों का शास्त्रीय परिपाटी से मुक्त ऐसा नायिका-रूप-वर्णन किया है, वहाँ उनकी सौंदर्य दृष्टि, रंगदृष्टि और तज्जन्य अनुभूति की अभिव्यक्ति हो सकी है । ऐसे छंदों में परंपरागत उपमानों एवं कल्पनाओं के होते हुए भी कवि ने सौंदर्य की सफल अभिव्यक्ति की है ।

लखपति के रूप-वर्णन में सौंदर्यजन्य हर्ष के अतिरिक्त रति-जन्य शारीरिक आसक्ति भी दिखाई पडती है । डॉ० नगेन्द्र ने रीति-काव्य के रूपवर्णन के मूल में इस तत्व को देखा है ।[१७] " सुरतरंगिनी " में रागिनियों की रूपछटा सौंदर्यद्युति और हावभाव के वर्णन में यह रतिजन्य शारीरिक आसक्ति का परिचय मिलता है :

" उपजावत है मदन कों जाकी मृदु मुसिकानि ।
भाव हाव कर बस कीयो षंभावति सुषदानि ।।४५९ ।।
अंग अंग दुति अतिघनी भूषन चीर अनूप ।
फैल रहे मन हरत तीय गौरी सत सुसरूप ।।४६१ ।।
चंप दाम अभिराम नल पीत बसन तन देषि ।
सुरति चिह्न हीय में धरे कुंभ सलोनी लेषि ।।४६६।।
लोनी दुति लषि देह की कंठ कपोत लजात ।
काम भरो तन राग सों यों हिंडोल सरसात ।।४६८ ।।
भूषन भाइ बनाइ के कछुक मुर मुसिकाइ ।
वार हि बार मनोज कों बेल-बलव अति धाइ ।।४७० ।। "

उपर्युक्त दोहों में शरीर के रूप के प्रति वासनामयी सौंदर्यानुभूति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है । कवि नारी के अंगों को नग्न और स्थूल रूप में नहीं, परंतु उनको द्युतिमान - भूषण, रंगीन वस्त्रपरिधान और मनभावन आवरण सहित देखते हैं । कवि नायिका के मुड़ मुड़ कर मृदु मुस्कान करने पर मोहित हो जाते हैं । इन छंदों को पढ़ने पर लगता है कि लखपतिसिंह की सौंदर्य-दृष्टि में वस्तु के साथ-साथ भावना का भी समन्वय हुआ है । सौंदर्य की तरलता और चेतना उनको उसके उपभोग के लिये लालायित करती है । यौवन की स्वाभाविक ऊष्मा और चेतना

oooooooo

१७ देव और उनकी कविता, पृ० १०२, डॉ० नगेन्द्र

सौंदर्य में सक्रियता भर देती है । सौंदर्य का मानसिक सुख शारीरिक सुख की इच्छा करता है । परिणामस्वरूप कवि लखपति की सौंदर्यानुभूति उपभोग-मूलक दिखाई पड़ती है ।

नख-शिख-वर्णन :

भारतीय काव्य-शास्त्र की नख-शिख-वर्णन की परिपाटी को भी लखपति ने ग्रहण किया है । नख-शिख के माध्यम से उन्हों ने रूप-वर्णन किया है । लखपतिसिंह द्वारा किये गये नख-शिख-वर्णन के समुचित अध्ययन के लिये सर्व प्रथम, उन अंगों की तालिका दी जा रही है जिनका वर्णन उन्हों ने किया है । यह वर्णन लखपतिसिंह के दो ग्रंथों में मिलता है — " सदाशिव-व्याह " और " लखपति-भक्ति-विलास " में । दोनों में वर्णित अंगों की तालिका इस प्रकार है :

"सदाशिव-व्याह" में वर्णित अंगों का अनुक्रम	"लखपति-भक्ति-विलास " में वर्णित अंगों का अनुक्रम
१	२
१ पगनख	१ केश
२ नूपुर	२ वेणी
३ पिंडली	३ माँग
४ जंघा	४ सीसफूल
५ कटि	५ भाल
६ रोमावली	६ कुंकुम बिंदु
७ उदर	७ त्यौरी
८ उरोज	८ श्रवन-कुंडल
९ कंठहार	९ भौंहें
१० भुजद्वय	१० बरुनी
११ अंगुली	११ नैन

१२	कौडी	१२	कपोल
१३	अधर	१३	नासा
१४	दंत	१४	नक मोती
१५	हास्य	१५	अधर
१६	वाणी	१६	दंत
१७	कपोल	१७	हास्य
१८	नासा	१८	वाणी
१९	नक मोती	१९	चिबुक
२०	ग्रीवा	२०	कंठ
२१	लोचन	२१	पीठ +
२२	अंजन +	२२	भुजद्वय
२३	भौंहें	२३	कंकन +
२४	कुंडल	२४	अंगुली
२५	भाल	२५	कुच
२६	त्यौरी	२६	रोमावली
२७	ललाट +	२७	त्रिवली +
२८	कुंकुम विंदु	२८	नाभि
२९	केश	२९	कटि
३०	पाटी +	३०	नितंब
३१	मांग	३१	पिंडली
३२	वेणी	३२	नूपुर
३३	वेणी	३३	पगनख

प्रस्तुत तालिकाओं में चिह्नित शब्दों को देखने से उक्त दोनों ग्रन्थों में वर्णित अंगों की नामगणना का अंतर स्पष्ट हो जाता है। " सदाशिव-व्याह " में उदर, अंजन, ललाट और पाटी का वर्णन किया गया है जो " लखपति-भक्ति-विलास " में नहीं मिलता, उसी प्रकार " लखपति-भक्ति-विलास " में पीठ, कंकन और त्रिबली का

वर्णन अतिरिक्त है । शेष शाब्दिक परिवर्तन के साथ वही का वही है । प्रस्तुत तालिका के अध्ययन से अन्य प्रमुख बात ध्यान में यह आती है कि दोनों ग्रंथों में वर्णित अंगों का अनुक्रम एक दूसरे के विपरीत है । "सदा-शिव-ब्याह " में यह वर्णन-क्रम पगनख से शिख तक आता है, जब इसके विरुद्ध " लखपति-भक्ति-विलास " में शिख से पगनख तक का वर्णन-क्रम है। शास्त्रीय शब्दावली में कहा जा सकता है कि " सदाशिव-ब्याह " में नख-शिख-वर्णन किया गया है और " लखपति-भक्ति-विलास " में शिख-नख । यह स्मरणीय है " सदाशिव ब्याह " में पार्वती का नखशिख वर्णन है और " लखपति भक्ति विलास " में सामान्य नारी का ।

हिन्दी साहित्य में नखशिख और शिखनख स्वतंत्र रूप में आचार्य केशवदास द्वारा प्रचारित किया गया । [१८] इन दोनों वर्णन-पद्धतियों में निहित परंपरागत दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए उन्हों ने लिखा है : [१९]

" नख तें सिख लौं बरनियैं देवी दीपति देखि ।
सिख तें नख लौं मानुषी " केसवदास " बिसेखि ।। "

महाराव लखपतिसिंह द्वारा रखे गये उक्त अंग-वर्णन-क्रम को देखते हुए यह निश्चित है कि उन्होंने अपने युग की इस साहित्यिक परम्परा का ग्रहण एवं अनुसरण किया है । चतुर्थ अध्याय में " सदाशिव-ब्याह " और " लखपति-भक्ति-विलास " की विषय-वस्तु के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि " सदाशिव-ब्याह " की नायिका मीलनी रूप में देवी पार्वती हैं, जिनके रूप-वर्णन के लिये नख-शिख की परिपाटी को अपनाया गया है । उसी प्रकार " लखपति-भक्ति-विलास " के अंतर्गत सुंदर स्त्री

oooooooo

१८ " हिन्दी साहित्य का अतीत ", दूसरा खंड, शृंगार काल, पृ० ३९७ ले० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रथम संस्करण, सं० २०१७, वाणी वितान प्रकाशन ।

१९ " केशव-ग्रंथावली", खंड १, पृ० १९७, " कविप्रिया", १५ वाँ प्रभाव, छं० ३, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ।

के कामी पुरुष पर पड़नेवाले प्रभाव की चर्चा के प्रसंग में अदिव्य (मनुष्य) सुंदर स्त्री का रूप-वर्णन करने के लिये शिख-नख की परम्परागत पद्धति को अपनाया गया है । इस प्रकार लखपतिसिंह द्वारा किया गया नख-शिख एवं शिख-नख-वर्णन परंपरागत है । सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह वर्णन कितनी क्षमता रखता है, आगे के विवेचन में इस पर विचार किया जा रहा है ।

महाराव लखपतिसिंह द्वारा किये गये नख-शिख-वर्णन के काव्य-सौन्दर्य पर विचार करने से पूर्व तद्विषयक रीतिकालीन साहित्य के संबंध में विद्वानों के मत को दृष्टिगत कर लेना आवश्यक है । रीति-काल में नख-शिख-वर्णन के अनेकानेक ग्रंथ लिखे गये परंतु सौंदर्य-चेतना को उद्बुद्ध कर सके ऐसे ऐन्द्रिय चित्र उनमें अत्यंत विरल है । [२०] डॉ० नगेन्द्र ने कवि देव के नख-शिख-वर्णन का विवेचन करते हुए इस प्रकार के रीतिबद्ध काव्य की साहित्यिक गुणवता पर जो मत व्यक्त किया है, वह इस प्रकार है :

" रीतिकाल में वस्तु-परकता एक दूसरे में मिलती है — वह है परिपाटी-ग्रस्त उपमान आदि का परिगणन । इस प्रकार का वर्णन प्रायः कवि की व्यक्तिगत भावना से शून्य होता है — उसमें भावगत सामंजस्य के स्थान पर प्रायः उपमानों और प्रतीकों का वस्तुपरक सामंजस्य ही मिलता है । - - - - - - - सौंदर्य के इस प्रकार के रीतिबद्ध रीति-काव्य के स्वाभाविक दूषण हैं । - - - - - - - - - उनके (देव के) नख-शिख-वर्णन से ऐसे बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं । " [२१]

oooooooo

२० " हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास ", पृ० २०३-२०५, पृष्ठ लेखक डॉ० बच्चनसिंह

२१ " देव और उनकी कविता ", पृ० १००-१०१

महाराव लखपतिसिंह के नख-शिख-वर्णन में परिपाटी-प्रथित उपमानों की योजना अवश्य मिलती है परंतु उनमें भावगत सामंजस्य का अभाव नहीं है । इसलिये यह नख-शिख-वर्णन लखपतिसिंह के काव्य का दूषण न होकर काव्यगुण का परिचायक है ।

महाराव लखपतिसिंह के नख-शिख-वर्णन के काव्य-सौंदर्य पर विचार करने से पूर्व एक अन्य बात भी दृष्टिगत करना आवश्यक है । वह यह कि उन्होंने नख-शिख- विषय के स्वतंत्र शास्त्रीय ग्रंथ की रचना नहीं की है परंतु " सदाशिव-ब्याह " और " लखपति-भक्ति-विलास " की कथावस्तु के सन्दर्भ में उसकी योजना की है । परिणामतः लखपति-सिंह के नख-शिख-वर्णन की प्रेरणा शास्त्रीयता की अपेक्षा ~~लखपतिसिंह के नख अपेक्षा~~ काव्यगत आवश्यकता में अधिक दिखाई पड़ती है ।

महाराव लखपतिसिंह के नख-शिख-वर्णन के कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

वेणी-वर्णन :

" मस्तक बार लसत मन मोहै सारी जरी किनारी सोहै ।
छूटे बारनि बादर छायें, नागनि सी बैनी लटकायें ।।२१६ ।। "
(" लखपति-भक्ति-विलास ")

इस उदाहरण में छूटे केश और लंबी लटों (वेणी) के लिये जिन उपमानों को प्रस्तुत किया गया है उनसे कवि के काव्य सौंदर्य और उनकी कल्पना-शक्ति का पता चलता है । छूटे केशों की घनी कालिमा और फैलाव के साम्य के आधार पर उनके लिये आकाश में छाये श्याम बादलों का प्रति-योज्य परंपरागत होते हुए भी काव्य-सौंदर्य से युक्त है । परंतु "नागिनी सी बैनी " में काव्य सौंदर्य की अपेक्षा परंपरा का निर्वाह अधिक दिखाई पड़ता है ।

भाल-तिलक-वर्णन :

" कुंकुम कौं बिंदू कियौ भाल, लषि यैं मंगल ग्रह रंग लाल ।
लंबे मषतूल सुं तार बार, अति रम्य अलक चिलकैं अपार ।। "
(" सदाशिव-ब्याह ", छंद० ६९)

भाल पर किये गये कुंकुम-बिंदु के लिये लाल रंग के मंगल ग्रह का उपमान देना काव्योपयुक्त नहीं है । मंगल का लाल रंग सामान्य पाठकों के लिये अनुभूति का विषय नहीं है, इसलिये इस उपमान के द्वारा रूप-ग्रहण नहीं हो सकता । प्रसिद्ध कवि बिहारी ने नायिका के मुख पर बिंदु, केसर आदि के कारण जो शोभा होती है उसे प्रत्यक्ष लाने के लिये इसी मंगल-ग्रह की यात्रा करवाई है :[२२]

" मंगल बिंदु सुरंग मुख ससि केसर आड़ गुरु ।
इक नारी लहि संग रसमय किय लोचन जगत ।। "

वर्ण्य-विषय का रूप-ग्रहण और रमणीयता निष्पन्न कराने में तो कवि सफल नहीं हुए हैं परंतु इससे यह अवश्य सिद्ध होता है कि महाराव लखपतिसिंह ने अपने युग के हिंदी-साहित्य का अच्छा अध्ययन किया है ।

परम्परागत वर्णन को अपना कर लखपतिसिंह अपने प्रतिपाद्य विषय को भी भूल बैठे हैं । " सदाशिव-ब्याह " में वल्कल धारण करने वाली भीलनी का परिचय पूर्व में देने के पश्चात्, नख-शिख-वर्णन के प्रसंग में उसी को जरतार की साड़ी से सुसज्जित वर्णित किया गया है :

" उर लौं प्रलंब बैंनी अचंभ, लपटी ब्याली मनु रंभ थंभ ।
सारी जरतारी सिर सुरंग, मनमथ हर कौं मन कियो भंग ।। "
(" सदाशिव-ब्याह ", छं० सं० ७१)

२२ " बिहारी ", मूल ग्रंथ, छं० सं० ४९६, ~~सं०~~ पृ० २२१, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

उपर्युक्त विवरण से
अतः स्पष्ट है कि महाराव लखपतिसिंह के नख-शिख-वर्णन में परंपरा का निर्वाह हुआ है । कभी कभी परंपरागत उपमानों के प्रभाव में आकर कवि ने काव्यगत औचित्य का भी भंग कर दिया है । फिर भी काव्य-सौंदर्य का बिल्कुल अभाव हो ऐसा नहीं है । अब नख-शिख-वर्णन से ऐसे छंदों को दृष्टिगत किया जाता है जिनमें कवि ने निजी सौंदर्य-दृष्टि, मौलिक कल्पना-शक्ति और सूक्ष्म निरीक्षण का सुंदर परिचय दिया है ।

भ्रू-वर्णन :
o—o—o—o—o

" बिबि भ्रू पिय वसि करन बिथारै पदम पत्र अलि पंष पसारै ।
नैन कमल निरमल अनियारे खंजन मीन मृगनि लखिहारे ।। "

(" लखपति-भक्ति-विलास ", छं० सं० २२५)

यहाँ परंपरागत सौंदर्यानुभूति नहीं है । कवि ने भौंहों के प्रतियोग्य के लिये मौलिक एवं सुंदर कल्पना की है । भौंहों का आकृतिसाम्य पद्मपत्र पर पंख पसारे भ्रमर के साथ देखना कवि की सूक्ष्म सौंदर्यदृष्टि का द्योतक है । इस उक्ति का काव्य सौंदर्य इससे भी बढ़कर " पद्मपत्र " से द्वारा व्यंजित अर्थ में है : मुख पद्मपत्र, भौंहें भ्रमर और पलकें भ्रमर के पंख हैं । निश्चय ही, कवि ने मौलिक कल्पना-शक्ति का यहाँ परिचय दिया है ।

ऊरोज-वर्णन :
o—o—o—o—o—o

" पीपल जु पत्र सों उदर देषि, दो ऊरज कनक के कलस देषि ।
कंचूकसि बंधे ऊरज कुंभ, भव कौ अनंग मन कियौ भंग ।। "

(" सदाशिव-ब्याह ", छं० सं० ५८)

यहाँ उदर के लिये पीपल के पत्र के उपमान की योजना की गई है । इस कल्पना में भी कवि ने अपनी मौलिकता का एवं सूक्ष्म निरीक्षण का

परिचय दिया है । कटि से स्तन-प्रदेश की ओर जाते हुए उदर और पीपल के पत्र में कवि ने अद्भुत सांम्य दिखाया है । कवि पाठक के मन में सौंदर्य-जनित आश्चर्य जगाने में सफल हुए हैं ।

नख-वर्णन :

" मानिनि चालैं गजगति मराल, लाली निचुरत पग रंग लाल ।
अंगुरी नख तारनि ओप अंग, छिमि छिमि बाजै बिछुवा सुढंग ।। "

(" सदाशिव-ब्याह", छं० सं० ५५)

सौंदर्य के मान से मानिनी नायिका की गति में मादकता आ गई है । वह सुंदर एवं अत्यंत सुकोमल है । जब वह मंद मंद चलती है तब उसके लाल पग अधिक लाल लाल हो जाते हैं मानो उनसे ललाई निचुड़ रही हो । प्रसिद्ध कवि बिहारी की नायिका भी अत्यंत सुंदर है, उसकी अंगुलियाँ कोमल और लाल लाल हैं, उनकी ललाई ऐसी जान पड़ती है मानो बिछुओं के मार से उनसे रंग निचुड़ रहा हो : २२-अ

" अरुन बरन तरुनी चरन अंगुरी अति सुकुमार ।
चुवत सुरंग रंग सो मानौ चपि बिछुवन के मार ।। "

सुकुमारता की यह व्यंजना लखपतिसिंह की कवित्व-शक्ति का अच्छा उदाहरण है । इस छोटे से छंद में लखपति ने मात्र सुकुमारता की ही नहीं बल्कि साथ ही साथ नायिका की गति रूप ज्योति एवं " छिमि छिमि " की संगीतात्मक ध्वनि से सौंदर्य की मुखरता की भी व्यंजना की है ।

इसी प्रकार थिरकते सौंदर्य का यह वर्णन भी लखपति के

२२-अ " बिहारी ", मूल ग्रंथ, छं० सं० २०, पृ० १८६, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

काव्य सौंदर्य का सुंदर उदाहरण है :

" सुक चंचा नासा सुभ दरसी, कहि सुगंध कै गहिबै कंदर सी ।
नाचंत तह मुक्ता नृतकारी थिरक्त थेइकार मुषधारी ।। "
(" लखपति-भक्ति-विलास ", छं० सं० २२७)

तात्पर्य यह है कि महाराव लखपतिसिंह ने एक ओर परंपरागत नख-शिख-वर्णन किया है तो दूसरी ओर सौंदर्य-बोध के लिये सक्षम ऐसा मौलिक, कल्पनाप्रचुर एवं सूक्ष्म वर्णन एवं चित्रण भी किया है । फिर भी यह निश्चित है कि लखपतिसिंह के नख-शिख-वर्णनों में रीतिकाल की परंपरागत अलंकरण प्रवृत्ति का प्रभाव अवश्य पड़ा है । अपनी मौलिक कल्पना-शक्ति से जहाँ उन्होंने काम लिया है वहाँ काव्योपयुक्त ऐसी उक्ति वे अवश्य रच पाये हैं । रीतिकाल के कवियों के नख-शिख-वर्णन के संबंध में यह कथन इस संदर्भ में विचारणीय है :

" रीतिकाव्यों का नख-शिख-वर्णन विलक्षणता प्रदर्शन की सीमा पर पहुँच गया । प्रत्येक अंग के लिये " अलंकार शेखर " और " कवि कल्पलता " आदि आदि में प्रतियोग्य की जो लंबी सूची दी गई है उसका बहुत ही अकाव्योचित प्रयोग किया गया है । " [२३]

किन्तु उपर्युक्त कथन लखपतिसिंह के काव्य पर पूर्णतया लागू नहीं होता । इसका कारण यह प्रतीत होता है कि

---

२३ " हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास ", षष्ठ भाग, पृ० २०३, पृष्ठ लेखक, डॉ० बच्चनसिंह ।

उन्हों ने नख-शिख विषयक स्वतंत्र ग्रंथ रचना नहीं की, परंतु कथा-वस्तु के संदर्भ में आवश्यकतानुसार ही नख-शिख-वर्णन किया । परिणामत: लक्षपति का नख-शिख-वर्णन काव्य-सौंदर्य के लक्षणों से युक्त, आलंबन के रूप की झलक देने वाला, सौंदर्यचेतना को उद्बुद्ध करानेवाला बन पड़ा है । परंपरा का निर्वाह होते हुए भी उसमें परंपरा-बद्धता नहीं है । सौंदर्यबोधात्मक तत्त्व से युक्त होने के कारण उनका नख-शिख-वर्णन पाठक के हृदय में रतिभाव और आश्चर्यभाव जगाने की क्षमता रखता है ।[२४]

नायक-वर्णन:

o-o-o-o-o-o

लक्षपतिसिंह की शृंगार-भावना के विषय में यह स्पष्ट किया गया है कि वे नौ रसों में शृंगार को श्रेष्ठ रस और उसके आलम्बन विभावों में नायक की अपेक्षा नायिका को अधिक रुचिकर मानते हैं । इस एकांगी दृष्टिकोण से उनकी निजी शृंगार-भावना का परिचय प्राप्त हो जाता है जिसका सोदाहरण विवेचन पूर्ववर्ती पृष्ठों में किया गया है । ऐसा होते हुए भी उनके साहित्यिक कृतित्व में नायक-वर्णन का सर्वतर अभाव नहीं है । उनके नायिका-भेद विषयक ग्रंथ " रसतरंग " में नायक के

oooooooo

२४ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी का यह कथन द्रष्टव्य है :

" जिन वस्तुओं का कवि विस्तृत चित्रण करता है उनमें से कुछ शोभा, सौंदर्य या चिर साहचर्य्य के कारण मनुष्य के रतिभाव का आलंबन होती हैं ; कुछ भव्यता, विशालता, दीर्घता आदि के कारण उसके आश्चर्य का - - - - - - - - । "

(" जायसी ग्रंथावली", चतुर्थ संस्करण, भूमिका, पृ० ९३)

भेदोपभेदों का शास्त्रकथित वर्णन मिलता है । इसके अतिरिक्त "सुर-तरंगिनी " में रागिनियों के उपरांत रागों का जो मानवीकृत वर्णन किया गया है उसमें भी नायक-वर्णन की झलक प्राप्त हो जाती है । कुछ उदाहरण उल्लेखनीय हैं :

" कुंडल कांनंनि मैं झलकैं मुष पैं सुधरी मुरली अटकी ।
गुंजनि माल गरे मैं बिसाल है पीरी यैं जोति छुली पटकी ।
देषत ही मग ऐसौ भयौ मन दौरि कैं वांह गहौं नट नटकी ।
छूटि गई अंषियांनि तैं लाज यौं फूटि गई दधि की मटकी ।। "
(" रसतरंग ", छं० सं० ४१२)

यहाँ कृष्ण का रूप-वर्णन किया गया है । रूप के वर्णन के साथ-साथ कवि ने कृष्ण के रूप-जनित प्रभाव का भी चित्रण किया है । कृष्ण के रूप-वर्णन में कोई नावीन्य नहीं, केवल परंपरा का निर्वाह मात्र है, परंतु रूप-जनित प्रभाव का संक्षिप्त चित्रण अधिक भाव व्यंजक है । नायिका का मन होता है कि दौड़कर उस सुंदर नट (कृष्ण) का हाथ पकड़ ले । कृष्ण के सौंदर्य को देखने से उसके मन में अपनत्व का ऐसा भाव उमड पड़ा कि आँखों से लाज छूट गई । मिलनातुर चंचलता के परिणाम-स्वरूप माथे पर रखी हुई मटकी नीचे गिर कर फूट गई ।

कवि ने नायक के रूप-वर्णन के बहाने नायिका पर पड़नेवाले रूप-जनित प्रभाव का वर्णन अधिक सफलता से किया है । एक दृष्टि से देखा जाय तो इस वर्णन में कवि का मन नायक के रूप-सौंदर्य से अधिक नायिका के भाव-सौंदर्य में ही अधिक रमा है । इससे कवि की नायिका-परक शृंगार-भावना का प्रमाण मिल जाता है ।

" सुरतरंगिनी " में रागों के मानवीकृत रूप-वर्णनों में नायक-वर्णन हुआ है । पूर्ववर्ती विवेचन में देखा जा चुका है कि कवि ने राग

भैरव को शिव रूप में कल्पित किया है । शिव के परिवेश का वर्णन इस प्रकार किया गया है :

" जटाजूट में गंग, त्रयलोचन चंद लिलाट ।
पन्नगि मनि कुंडल जोतिश्रव, सूल डवरू मुख पाट ।। "
(" सुरतरंगिनी ", छं० सं० ५४०)

कवि द्वारा किया गया शिव के परिवेश का यह वर्णन अपने में कोई काव्य सौंदर्य नहीं रखता । राग देसकार की वलिष्ट देह का यह वर्णन भी इसी प्रकार है —

" दीरघ लोइन कान लगि सरसत कमल अनूप ।
भुजा पीन कटि छीन अति सोभा सरल सरूप ।। "
(" सुरतरंगिनी ", छं० सं० ६५६)

राग नटकेदार के रूप-वर्णन में लखपतिसिंह ने अच्छी चित्र-सामग्री जुटाई है :

" श्रवन लोल कुंडल ललित जगमग ससि दुति सीस ।
राजित नटकेदार यों पंच वचन जगदीस ।।
उजल अंग विभूत वर कर त्रिसूल अरु बीन ।
सदा तपस्वी रय मृदु बोलत बचन प्रवीन ।।
दृगनि ध्यानं आननि मुदित तारी लगी अनूप ।
इहिं विधि सों केदार नट बरनत चित्र सरूप ।। "
(" सुरतरंगिनी ", छं० ६५९ से ६६१)

उपर्युक्त छंद में लखपतिसिंह का नायक तपस्वी रूप धारण किये हुए है तो इस छंद में व्यायामवीर का :

" रंगभूमि व्यायाम नित करत जाइ कै एक जाम ।
इहिं विधि सो बरन जगत देसकार सुख धाम ।। "
(वही, छंद सं० ६५७)

तात्पर्य स्पष्ट ही है कि नायिकापरक शृंगार-भावना के प्रेमी रसिक कवि से नायकों के तपस्वी और व्यायामवीर स्वरूप-वर्णनों की ही अपेक्षा की जा सकती है । महाराव लखपतिसिंह की सौन्दर्य-चेतना की यह सीमा ही समझनी चाहिये कि नायक का सौंदर्य उनकी सौंदर्य-दृष्टि के अनुकूल नहीं है । वैसे सामान्यतया, प्रायः सभी रीति-कालीन कवियों के लिये यह सत्य सिद्ध हो सकता है ।

अ- २ रतिक्रीड़ा :

रीतिकालीन कवियों की शृंगार-भावना में स्पष्ट रूप से शारीरिक रति की स्वीकृति है । [२५] इस का कारण यह था कि वे प्रेमी नहीं रसिक और विलासी थे । लखपतिसिंह को भी इनसे भिन्न नहीं कहा जा सकता । जैसा कि उनके जीवनी विषयक तथ्यों से प्रमाणित है । उनके द्वारा किये गये यह वर्णन उल्लेखनीय है —

" सीस सौं सीस मुषैं मुष सौं, बतियां अपनी बतियां बरजोरी ।
बाहु सौं बाहु लपेटि लई कटि सौं कटि गांठि करी है किसोरी ।
जांघ सौं जांघनि पींडी सौं पींडीयैं बांधे पगैं पग घूंघरू डोरी ।
रात कि रीमन लखी मैं सखी तब तैं मेरे चित मैं चित्र बसोरी ।। "

(" रसतरंग ", छं० सं० ३२)

इस वर्णन में शारीरिक रति-कामक्रीड़ा का वस्तुमूलक उल्लेख कर दिया गया है । इसमें स्थायीभाव रति को जगाने की और शृंगार रस को निष्पन्न करने की क्षमता का अभाव है । कहीं आलम्बन विभाव की भाव-पोषक चेष्टाओं का, संचारियों का वर्णन नहीं हुआ है । ऐसे स्थूल वर्णनों को काव्योत्कृष्टता की दृष्टि से महत्त्व नहीं दिया जा सकता । रीति-कालीन काव्य में भी इस प्रकार के वर्णन मिलते हैं क्योंकि नायिका-भेद

oooooooo

२५ " देव और उनकी कविता ", पृ० ९४, डॉ० नगेन्द्र

विषयक ग्रन्थों में नायिका के भेदोपभेदों के रूढ़, शास्त्रीय कथन करने के लिये यह आवश्यक था। लखपति ने भी विश्रब्ध नवोढ़ा नायिका की रतिक्रीड़ा के उक्त वर्णन में अपने शास्त्रीय कर्म को निभाया है। परंतु कवि में संयोग शृंगार को निष्पन्न करने की क्षमता अवश्य है। मुग्धा नायिका की लज्जा का यह वर्णन उल्लेखनीय है :

(एक)" जगैं अंग ज्वानी रुपरंग की निसांनी गंनी,
पेलति सखीनि मांभिन कांम की कुमारी सी।
ये ते मांभिन आचकां कन्हाई दृष्टि आये या कैं,
बढ़ी मन बीस लाज मांनौं मीडि मारी सी।
हियरा धरकि आयौ आंचर ढरकि आयौ,
घूंघट सरकि आयौ भरक मतवारी सी ।। "

(दो) " मुख मोरति है दृग जोरै नही रसवात सुहात न यौं चित भोरा।
पाउन देत कहूं पलिका पर प्रीति न जानति ऐसी कठोरा।
हाथ तैं हाथ छुडावति है बल बाहिर भागति है करि जोरा।
नायक नेह उपाय दिखावै पैं हाथ तैं जात ज्यौं पारद दौरा ।। "

(" रसतरंग " छंद संख्या २९, २७)

उपर्युक्त छंदों में रस के अवयवों की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। संचारियों की योजना अत्यंत रमणीय एवं सफल हुई है। दूसरे उदाहरण में नायिका की सबल चंचलता और अंगों की कोमलता की अभिव्यंजना के लिये पारद का उपमान कवि की तद्विषयक सूझ का परिणाम है। पारद के उदाहरण से भाव व्यंजना बड़ी गहरी हो गई है। कवि इन छंदों में संयोग शृंगार के विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी के वर्णन द्वारा पाठक को रसात्मक अवस्था तक अवश्य पहुँचा देते हैं। एक अन्य छंद में भी कवि

ने रसात्मकता की सरस व्यंजना की है । नवोढ़ा नायिका गौने की रात्रि के बीतने के पश्चात् प्रातःकाल देवरानी, जेठानियों से भरे संयुक्त परिवार में, एक कोने में सर झुका कर, सकुचा कर बैठी है । सखियाँ उसके मुँह को देखने आई हैं । घूँघट खोलकर जैसे ही उन्हों ने उसको देखा नायिका मुस्करा उठी । उसका हाथ पकड़ कर सखियाँ बीती रात की बात पूछने लगीं और देवरानी, जेठानियाँ उसकी मीठी हाँसी करने लगीं । नवोढ़ा की इस सरस मनोदशा का चित्र कवि इस प्रकार देते हैं :

" गौने की राति गई भई प्रात हीं, दूलही बैठी है कौंने में छानी ।
सीस नवाय कपोल दुराय कै, छाती पैं हाथ छिपाय सयानी ।
आईं सबैं सखियां मुख देखन, घूंघट खोलत है मुसिक्यानी ।
पूछत प्रेम की बात गहैं कर, हांसी करैं यौं, द्यौरानी जिठानी।"

(" रसतरंग ", छं० सं० ३०)

संयोग शृंगार के आलंबन-आश्रय की रतिक्रीड़ाओं के सीधे कथन की अपेक्षा उसी के परिणामस्वरूप नवोढ़ा की जो मनःस्थिति हुई है उसके यथार्थ एवं सरस कथन की यह परोक्ष पद्धति रसात्मकता की व्यंजना करने में कितनी सफल है । ऐसे वर्णन को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाराव लखपतिसिंह की शृंगार-भावना में प्रधानता परितुष्ट रसिकता की है । इस तथ्य की पुष्टि के लिये एक अन्य छंद भी द्रष्टव्य है ।

नायक-नायिका के मिलन से दोनों को परस्पर प्रेम की प्राप्ति होती है । दोनों के तृप्त हृदय अद्भुत सुख की अनुभूति करते हैं । यही सुखानुभूति दोनों के चित्त की प्रसन्नता की जनक है । लखपति एक ऐसी ही प्रसन्न और संतुष्ट नायिका का वर्णन करते हैं जो अपने प्रिय के

दर्शन मात्र से अपने दर्द को भुलाकर अंग-अंग में सुख का अनुभव करती है । अपने प्रिय में ही उसे अनेक रिद्धियों, आठ सिद्धियों और नौ निधियों की प्राप्ति हो जाती है । सब संकटों के जाल के हट जाने से अब वह उत्साहित और हर्षित हो गई है । ऐसी अंग अंग में अनुराग और प्रमोद भरी नायिका का यह चित्र निस्सन्देह आस्वादनीय है तथा कवि की सात्विक शृंगार-भावना का भी वह अच्छा उदाहरण है :

" राउरौ दरस पायौ अंग अंग सुख छायौ,
दरद गमायौ रूप आयौ है रसाल कौ ।
पाई है अनेक रिद्धि आठ सिधि, नौहूं निधि
विविध उछाह बिधि जाल गौ जंजाल कौ ।
हीय मैं हरष भरयौ नैंन जुग देखि ठर्यौ,
पुन्य तरु फूलि फर्यौ अजिर उताल कौ ।
देखत गोपाल द्विजबाल भले हाल भई,
भई हौं खुस्याल भाग खुल्यौ मेरे भाल कौ ।। "
(" रसतरंग ", छं० सं० ३२५)

" रसतरंग " जैसे नायिका-भेद-विषयक शास्त्रीय ग्रंथ में, रीतिकाल के कवियों की विलासी प्रवृत्ति के वातावरण में, जिसका कि पूर्व में उल्लेख कर आये हैं, प्रसन्न, स्वस्थ शृंगार-भावना से युक्त ये छंद लखपतिसिंह की प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्ति के सूचक हैं । ऐसे उदाहरणों से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि स्त्री-पुरुष के शास्त्रसम्मत संयोग-वर्णन में स्थूल, शारीरिक धरातल पर कवि अवश्य उतर आते हैं परंतु यह विलासी प्रवृत्ति उनके शृंगार-वर्णन की लाक्षणिकता न होकर क्षणिक आवश्यकता मात्र दिखाई पड़ती है । संयोग-शृंगार के अंतर्गत शरीर-सुख और उससे उत्पन्न मानसिक प्रसन्नता की सरस अभिव्यक्ति भी उन्होंने की है । लखपति

की शृंगार-भावना की यह लाक्षणिकता है । इसके प्रमाण उनके काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थ के अतिरिक्त शुद्ध काव्य के ग्रन्थों में भी पाये जाते हैं जो प्रस्तुत निष्कर्ष के प्रमाणस्वरूप द्रष्टव्य हैं ।

यह देखा जा चुका है कि " लखपति भक्ति विलास " लखपति की शुद्ध काव्य-रचना है । उसमें एक प्रसंग इस प्रकार है । प्रह्लाद की रामनाम की रटन को छुड़ाने के लिये उनके गुरु की पत्नी उन्हें समझाती हैं कि वह असुर विद्या सीख कर बड़ा वीर राजा बने और अनेक स्त्रियों से ब्याह कर भामिनियों के साथ सुख भोगे । प्रह्लाद इस उपदेश के उत्तर में विवाहिता नारी के आदर्श स्वरूप का वर्णन करते हैं :

" जग जीवन रति रानी जानी, पुनि मुष हांसी मंद पिछानी ।
सुष करिनी गृह काज सुधारैं, प्रेम पगी पति सेज पधारैं ।।
परसत ता तन पति सुष पावैं, मिलत विरह साल सुमिटि जावैं ।
रुचि करि हाव भाव दिषरावैं, पति समीप प्रेमहिं उपजावैं ।।
पति नष तन लगि सोभा पाये, लालैं सुवरन खंभ लगाये ।
भामिनि श्रमजल अंग भर्यौ है, सिषरी सिषर हिं ओस पर्यौ है ।।
चाहि कियैं चित चिंता चूरै, पति अभिलाष प्रेम तैं पूरे ।
सतदासी जिहि संग सुहावैं, पेषत सौति सबैं दुष पावैं ।।

(" लखपति-भक्ति विलास " छं० २४६ से २४९)

इन छंदों में अभिव्यक्त भावना, पूर्व चर्चित शृंगार-भावना की सात्त्विकता, प्रसन्नता और संतोष का ही परिणाम है जो शृंगार-भावना का समुन्नत आदर्श स्वरूप है । समाज का मूलाधार है गार्हस्थ जीवन और उसकी सफलता का प्रमाण है सुखी, प्रसन्न और सन्तुष्ट दाम्पत्य । महाराव लखपतिसिंह ने गृहिणी के आदर्श, कर्तव्यनिष्ठ और प्रेम-सभर स्वरूप के

वर्णन द्वारा अपनी आदर्श शृंगार-भावना का परिचय दिया है । कवि ने विवाहिता नारी को " रति रानी ", " सुख करिनी ", " प्रेम पगी ", " सतदासी " कहकर तथा " मार्मिनी श्रमजल " का वर्णन करके अपने नारी विषयक दृष्टिकोण को भी स्पष्ट किया है, जो उनकी शृंगार-भावना का प्रेरक तत्त्व मालूम पड़ता है ।

अ-३ परिहास और विनोद :

संयोग शृंगार के अंतर्गत विनोद का अपना विशिष्ट स्थान होता है । संयोग के आनंद और प्रेम के गर्व को अभिव्यक्त करने का यह सुन्दर माध्यम है । रीतिकालीन कवियों ने परिहास और विनोद की सुंदर व्यंजना की है । परिहास के अन्तर्गत

(१) नायिका का नायक से परिहास

(२) नायक का नायिका से परिहास

आदि मुख्य प्रसंग आते हैं । उसमें कहीं आलम्बन की प्रत्युत्पन्नमतित्व कहीं विनोद तो कहीं वाग्वैदग्ध्य को अभिव्यक्त किया जाता है । ये वर्णन या संवाद व्यंजनापूर्ण और मनोरंजक होते हैं ।

महाराव लक्ष्मीतिसिंह ने शृंगार की प्रसन्नता की उचित अभिव्यक्ति के लिये इस माध्यम का सफल उपयोग किया है । यहाँ कुछ उदाहरण उल्लेखनीय हैं :

नायिका नायक से परिहास करती है । नायक ने नदी में स्नान करती नायिका के वस्त्रों को चुरा लिया है । वह उसे लौटाता नहीं है । नायिका उसे अनेक सौगंधें देती है और अंत में उसे ठग, चोर आदि कह कर अपने वस्त्र माँगती है । व्यंग्य के द्वारा भाव की व्यंजना तीखी

हो जाती है ।

" पानी के सौंह तौ सोये समुद्र मैं पावक की बडवानल धारे ।
सांप को सौंह तौ सेभन करी तुम हाथी की सौंह तौ हाथी
उभारे ।
कूदैं तौ वाम्न रूप ठग्यौ वलि पैं डग दै तिहुं लोक पसारे ।
नाम जु है हरि गोपी कहैं हरि चोरे सो दीजियै चीर हमारे ।।"

(" रसतरंग " छं० सं० २४८)

एक अन्य छंद में शंकर-पार्वती के बीच इसी विषय को लेकर परिहास होता है । शंकर ने पार्वती का कंगन चुरा लिया है :

" दैं कुंभ को जल की सिर गंग सदा तिनि तैं तन नैकुं न भीजैं ।
आगि रू सांप के सौंह करैं सो तो भाल हिये पैं रहैं यह चीजैं ।
पारवती-पति सौं हसि यौं विधि नाउं वर्यौं हर सो सुनी लीजैं ।
हाथ कौ कंकन खेल चुरायो ते वेगि मया करि मो कहं दीजै ।। "

(" रसतरंग ", छं० सं० २४९)

उक्त दोनों उदाहरणों में नायिका का विनोद व्यंग्यात्मक है । व्यंग्य के द्वारा काव्य की अभिव्यंजना पर प्रभाव पड़ता है । पहले तो वे अपने नायक की महानता, शक्ति और यशस्वी कार्यों का उल्लेख करती हैं अर्थात् गुणगान करती हैं, परंतु ऐसा कहने के पश्चात् वस्त्रों और कंगन जैसी तुच्छ वस्तुओं की चोरी करनेवाले नायक पर पैना व्यंग्य कसती हैं । नायिका अपने नायक के चोरी करने के दुर्गुण को अधिक खुलकर कहती हुई परिहास करती है कि क्या करें, इनका तो नाम ही " हरि " और " हर " अर्थात् चोरी करनेवाला, ऐसा है । उक्त दोनों उदाहरणों में लखपतिसिंह परिहास और व्यंग्य की अभिव्यक्ति में सफल हुए हैं ।

एक अन्य छंद में विनोद और परिहास अधिक प्रस्फुटित हो

जाता है । हास-परिहास की योजना में कवि ने नई प्रसंगोद्भावना की है, यह विशेष विचारणीय है । एक दृश्य, एक छोटी-सी घटना से सम्बद्ध सवैये जैसे छोटे से मुक्तक में कितने भाव कवि ने भर दिये हैं । राधा का कृष्ण पर एकाधिकार बड़े सुंदर ढंग से व्यंजित किया गया है । कृष्ण ने राधा का परिहास करने की युक्ति सोची । उन्होंने किसी गोपकुमार को गोपी रूप में सजाया माल पर बेंदी, आँखों में अंजन दिया, यहाँ तक कि दो बिल्वफल उसकी छाती में कंचुकी से कस दिये । इस अनजान गोपी को सजा धजा कर अपने साथ लेकर मंद मंद मुस्कराते हुए कृष्ण राधा के पास पहुँचे । राधा दोनों को देख कर चिढ़ गईं और ईर्ष्या की अग्नि से जलने लगीं । परंतु ज्योंही उस अनजान गोपी ने मुँह से शब्द निकाला, राधा कृष्ण के परिहास को समझ गईं और सब हँस पड़े:

" गोपकुमार कै माल पै बेंदी दै आंखिनु अंजन मांझि भरी ।
कंचु कस्यौ फल बील के दूवै धरि भूषन चीर की सोभ करी ।
संगि लै आये रिसानी है राधिका बोलत ही सब जानि परी ।
गोपी यैं राधा हसी इकु और हि दूसरी और हसे जु हरी ।। "

(" रसतरंग ", छं० सं० २५०)

वैसे यह छंद विवरणात्मक अधिक है, मार्मिक नहीं, परंतु लखपतिसिंह की प्रसंगोद्भावना एवं परिहास-कल्पना इस छंद में उसकी मौलिकता की परिचायक है । ऐसे उदाहरणों में मीठी, मंद मुस्कराहट की जो निष्पत्ति होती है वह संयोग-शृंगार के आह्लादक और सत्वशील स्वरूप की द्योतक है । लखपति-सिंह ने नायिका-भेद विषयक ग्रंथ में " परिहास " के अंतर्गत ऐसे छंद दे कर शास्त्र-कर्म ही निभाया हो ऐसा नहीं है, उनमें मौलिक कल्पना-शक्ति भी है ।

इसी प्रकार " सदाशिव-व्याह " के कुछ छंद भी द्रष्टव्य

हैं जो विनोद के अच्छे उदाहरण हैं । शिवजी का पार्वती से विवाह सम्पन्न हो रहा है । वरवधू के फेरे हो चुके हैं । ~~जासी~~ आशीर्वचन भी समाप्त हो गये हैं । अब पुरोहित वेदी में बैठकर, हाथ जोड़कर शिवजी से कहते हैं कि कन्या के चीर से बाँधने के लिये वे अपने वस्त्र का अंचल उनको दें । ऐसा कह कर पुरोहित ने अपना कर्तव्य समझ कर शिवजी की कमर पर हाथ से स्पर्श किया । कमर पर लिपटे साँप को स्पर्श करते ही पुरोहित मारे डरके वेदी से कूद पड़े और बाहर निकल गये । दान भी न मिला और दगा हुआ कहते हुए वे भाग पड़े । यह देख-सुन कर उपस्थित इंद्र, चंद्र, नागेन्द्र, नर, नारी सब हँस पड़े । कवि ने इस छंद में प्रसंगोद्भावना की शक्ति का अच्छा परिचय दिया है :

" आय पुरोहित बैठि कै बेदी मैं ईस कौं विप्र कहै कर जोरी ।
द्यौं अंचरा तुम कन्या के चीर तैं बांधिहूं गांठि सदा हित होरी ।
प्रोहित हाथ दयो सिव सांप तैं कौं कूकि डर्यौ गुरु कूदि
परयोरी ।
इंद्र औ चंद्र नागेंद्र हसे नर दूसरी और हंसी सब गोरी ।
बापुरौ विप्र पुकारत बाहिर दान न पायौ दिवायौ दगौ री ।
देवनि दिग्गज दानव मानव देखि हसी उत गोरी की टोरी ।।"
(" सदाशिव-ब्याह ", छं० सं० २०९)

" सदाशिव-ब्याह " में शिव और पार्वती के विवाह-प्रसंग में दोनों पक्षों की स्त्रियाँ एक दूसरे को गालियाँ देती हैं । इस गाली-प्रसंग के अंतर्गत भी विनोद, परिहास और व्यंग्य के अच्छे उदाहरण मिलते हैं :

शिव की भौतिक विपन्नता और विचित्र संपत्ति का यह वर्णन चुभते हुए व्यंग्य और मुक्त परिहास का उदाहरण तो नहीं है, परंतु शिवजी के अवधूत रूप और उनके बेपरवाह, मस्तमौला स्वभाव का

वर्णन पढ़कर पाठक मंद मंद मुस्काता अवश्य है :

" माल मुलक न हाथी न साथी न आथी न पोथी न चेटी न
चेटा ।
अंग बभूति लगाय विरूप भौ लंबौ गरै उर सांप लपेटा ।
बावरो बैल्ह चढ्यौ बिष षात है भूत परे तन सौं करै भेटा ।
जानत हौ सिगरी जुवती तुम ये अवधूत है कौन कौ बेटा ।। "
(" सदाशिव-ब्याह " छंद २३९)

लखपतिसिंह के परिहास-विनोद-वर्णनों के द्वारा संयोग-शृंगार के स्वस्थ और आह्लादक स्वरूप को अच्छी पुष्टि मिलती है । परंतु कवि जब एक निश्चित परिपाटी का अनुसरण करने को बाध्य होकर हास्य का निर्माण करते हैं तब वह अश्लीलता में परिणत हो जाता है, जो रस के लिये उपकारक नहीं प्रतीत होता । नायक-प्रकरण में ढीठ विदूषक का यह हास्य रसाभास है जो परंपरागत शास्त्रीय चर्चा में भले स्थान रखता होगा, परंतु काव्य की दृष्टि से सदोष है :

" सेजन संवारि बिछौननि झारि कैं आप हि ता बिच फूल
फलसाये ।
मोहन राधिका बातैं बनाय कैं कुंज के भौन मैं आनि बसाये ।
प्रेम तैं राति कौं नायक नैं जब कंचुआ नीवी के बंध खिसाये ।
अैसे हि मैं तब धीठ विदूषक कुक्कुट नाद कियो सहसाये ।। "
(" रसतरंग " छं० सं० ३१३)

निष्कर्ष यह कि लखपतिसिंह द्वारा किया गया परिहास-विनोद-वर्णन संयोग शृंगार के सत्वशील, स्वस्थ, प्रसन्न स्वरूप का परिपोषक है । नायक-नायिका के मिलन-प्रसंग में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है । लखपतिसिंह

ने इसकी उचित और रसोपकारक अभिव्यक्ति की है ।

अ- ४ उद्दीपन-विभाव-वर्णन :

रस के विकास में विभावों का महत्त्वपूर्ण स्थान है । विभाव दो प्रकार के हैं — आलंबन और उद्दीपन । शृंगार के विवेचन के अंतर्गत उद्दीपन-वर्णन की चर्चा आवश्यक हो जाती है । शृंगार रस में उद्दीपन के महत्त्व और स्वरूप को प्रकाशित करते हुए आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र लिखते हैं : " शृंगार रस में अन्य रसों की अपेक्षा उद्दीपन के सम्बन्ध में एक विशेष बात देखी जाती है । अन्य रसों में बाहरी उद्दीपन या तो आते ही नहीं या तो बहुत कम आते हैं । पर शृंगार में बाहरी उद्दीपन भी आया करते हैं, नदीतट, चंद्रिका, पवन, ऋतु आदि शृंगार के बाहरी उद्दीपन हैं । " [२६] महाराव लखपतिसिंह के शृंगार काव्य में आलम्बन की चर्चा पूर्ववर्ती विवेचन के अंतर्गत आ चुकी है, अतएव यहाँ उद्दीपन विभाव पर ही विचार किया जा रहा है । उनकी रचनाओं में उद्दीपन-विभावों की योजना संयोग शृंगार के अंतर्गत ही प्रायः मिलती है ।

उद्दीपन दो प्रकार के होते हैं, एक नायिका या नायक की चेष्टाएँ जो हाव कहलाती हैं, दूसरे प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन ।

शृंगार चेष्टाएँ :

नायिका की स्वभावज अथवा अयत्नज, सुन्दर भंगिमाएँ, जो नायक के प्रेम को उद्दीप्त करने के लिये होती हैं उन्हें " शृंगार चेष्टाएँ " अथवा " हाव " कहा जाता है । [२७] महाराव लखपतिसिंह

---

२६ " बिहारी " पृ० ११९, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

२७ " हिन्दी साहित्य कोश," भाग १, पृ० ९०७, ले० डॉ० राकेश गुप्त ।

का यह हाव वर्णन देखा जा सकता है :

" आँगन बैठी अलीगन माँझि सुहावनी बातैं करैं छल मैं ।
खेलैं हसैं रस भीजैं सबैं हम रँगरली यौं मची थल मैं ।
काहू सखी कह्यौ आये हैं लाल सँभारति नां तन वा पल मैं ।
चौंकि उठी तत्काल वे बाल ज्यौं बीजुरी कौंधत बादल मैं ।। "
(" रसतरंग ", छं० सं० ३५९)

नायिका के मन में एवं तन में भी काम के अंकुर उपजे हैं । परंतु वह छल करके अपने विकारों को छिपाने की चेष्टाएँ करती है । इसलिये वह सुहावनी बातें करती है, अपनी सहेलियों से खेलने, हँसने लगती है और उसीमें रसमग्न होने का दिखावा करती है । परंतु सहसा एक सखी ने बताया कि लाल (नायक) आये हैं । यह सुनते ही नायिका से एक पल भी सँभलते नहीं बनता और तत्काल वह बादल में कौंधती बिजली की तरह चौंक उठी । कवि ने यहाँ नायिका की बाह्य- चेष्टाओं के बहाने उसकी कामोद्दीप्त मनोदशा की सुंदर व्यंजना की है । नायक के आगमन की बात मात्र, सुनते ही वह अत्यंत उद्दीप्त हो जाती है । यह उद्दीपन-वर्णन नायिका की मनोदशा का व्यंजक है । अब, नायिका की शृंगार चेष्टाएँ नायक को कैसे कामोद्दीप्त करती हैं, उसे इस छन्द में सरसता के साथ प्रस्तुत किया गया है :

" बाँह पसारि गरै बिचि डारि कैं
बोल उचारि महारस भीन्हौ ।
कंत जगावति कांम लगावति
यौं उपजावति प्रेम प्रबीन्हौ ।
लाज गई रस येक भई तन केलि भई
मुख चुंबन दीन्हौ ।
रँगरली ब्रिषभांन लली अधराति
मिली हरि कौं बसि कीन्हौ ।। " ("रसतरंग", छं० ३५५)

इस छंद में नायिका की शृंगार चेष्टाएँ भावोद्बोधक बन पड़ी हैं और शृंगार रस की अभिव्यक्ति की समुचित कारणीभूत हैं । उद्दीपन-विभाव के अन्य उदाहरण भी लखपतिसिंह के काव्य में मिलते हैं ।

प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन :

कवि ने प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन किया है । परंतु यह विचारणीय है कि इन न वर्णनों को स्वतंत्र प्रकृति-चित्रण अर्थात् आलम्बनगत प्रकृति-वर्णन के रूप में भी गिना जा सकता है । क्योंकि उनमें नायक-नायिका का कोई भी संदर्भ नहीं दिया गया है । " रस तरंग " में शृंगार रस के दोनों पक्षों की संपूर्ण शास्त्र-चर्चा करने के पश्चात् कवि शृंगार रस, प्रमुखतया संयोग शृंगार के उद्दीपन के रूप में ज्योत्स्ना का वर्णन करते हैं । वैसे, इस दृष्टि से कवि का उद्देश्य स्पष्ट ही है कि वे इस वर्णन को उद्दीपन के रूप में ही प्रस्तुत करते हैं :

" सूर अथौंत समैं दिसि पश्चिम अंबर देखी है ऐसी ललाई ।
पल्लव और गुलाल के रंग की दीठि परी नहीं ऐसी निकाई ।
चंदकला ढिग तारनि पुंज तहां उपमा यह चित्त मैं आई ।
मानहि कौ गढ तोरिबै मैंन यौं आप संवारि गिलोल बनाई ।।"

(" रसतरंग ", छं० सं० ४३२)

उपर्युक्त छंद में कवि ने प्रकृति के वर्णन के द्वारा अनुराग को सफलता से ध्वनित किया है । लालिमा अनुराग का संकेत करती है । चंद्रकला और निकटवर्ती तारों के पुंज का दृश्य उद्दीपक है । एक ओर ये दोनों रति-भाव के उद्दीपक हैं और दूसरी ओर रतिविषयक कालानुरूपता के भी व्यंजक हैं । अतः दुहरे उद्दीपन विभाव की योजना में सफल यह छंद लखपति के काव्यत्व का परिचायक है । उत्प्रेक्षा के द्वारा कवि ने

शृंगारिकता की बड़ी सुन्दर व्यंजना की है ।

एक अन्य दृश्य भी देखिये । यहाँ पृथ्वी पर चारों ओर फैली चाँदनी की धवलता का वर्णन किया गया है :

" की धरनी सब रूपे के पत्र सौं ता परि चंदन लेप लगायौ ।
चांदनी पारद सी लपटानी है ऊजलता सौं सबै जग छायौ।
सूत कियौ ससि को सब अंसुनि हाथनि तैं बिधि आप बनायौ ।
ब्यौंत बनाव कियौं चतुराई दसौं दिसि अंबर ऐसौ तनायौ ।। "

(" रसतरंग ", छं० सं० ४३४)

यह सत्य है कि नायिकाभेद विषयक ग्रंथ में कवि को शास्त्रानुरोध के कारण उद्दीपन-विभाव के अंतर्गत प्रकृति को गिनाने के लिये " रसतरंग " में तद्विषयक छंद लिखने पड़े हैं, इसलिये उपर्युक्त छंदों के आधार पर उद्दीपन रूप में प्रकृति के वर्णन का उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया जा सकता । परंतु अन्य काव्य-ग्रन्थों में भी प्रसंगानुसार कवि ने प्रकृति के ऐसे चित्र अंकित किये हैं जिनके आधार पर उद्दीपन रूप में प्रकृति-वर्णन का मूल्यांकन किया जा सकता है । " सदाशिव-ब्याह " में पार्वती भीलनी का रूप धारण करके शिवजी की तपश्चर्या भंग करने के लिये आती हैं, उस समय का शृंगारोद्दीपक वर्षा-वर्णन इस के उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत है :

" घनघटा रचाई घरर घुराई तडित ललाई बिसतारैं ।
बरषा बरसाई भरी झुकाई भूमि भराई जल धारैं ।
उतमंगि उगाई अंकुर आई सरस सुहाई छबि दारैं ।
ईहिं बिधि एकंगी मदति अनंगी भामिनि भंगी रचवारैं ।
छबि पत्रनि छाई उर लगि आई दुति दरसाई हिय हरिनी ।
बहु सौरंभ बहकी मंजरि महकी गुन सौं
महकी छल छरिनी ।

फूलनि सौं फूली मूल अमूली थिर जड थूली डिढ डारैं ।
इंहिं विधि एकंगी रंगसुरंगी भामिनि मंगी रखवारैं ।। "

(" सदाशिव-ब्याह ", छं० सं० ४८, ४९)

इस उद्दीपन-वर्णन में प्रकृति के माध्यम से रतिभाव का क्रमिक विकास व्यंजित हुआ है । जैसे, क्रमशः घनघटा, तड़ित, वर्षा की मनडी, अंकुर, पत्र, सौरभ, मंजरी, फूल, डालियों के क्रमिक उल्लेख का कलात्मक प्रयोजन यही है। इस प्रकार लखपतिसिंह के काव्य में उद्दीपन रूप में प्रकृति-वर्णन का यह उत्कृष्ट उदाहरण है । इसी ग्रंथ में एक अन्य उदाहरण भी दृष्टिगत होता है । प्रसंग वही है, कामदेव के प्रभाव से उद्दीपक वातावरण निर्मित हो गया है । कवि के शब्दों में वह प्राकृतिक वातावरण इस प्रकार है :

" रजनी इकंत अरु सुभग राग । बरषा बनाउ अरु विहद बाग ।
भव लखो गौर तन तहां भाम । बिजुरी सम दीपति वहैं बाम ।।"

(" सदाशिव-ब्याह ", छं० सं० ५४)

१(आ) वियोग-वर्णन :

शृंगार रस के दो पक्षों -- संयोग और वियोग में से संयोग की अपेक्षा वियोग में आलम्बन आश्रय में चिंतन, ध्यान, स्मरण आदि का आधिक्य होता है । इसलिये उस के वर्णन में अंतर्वृत्ति को स्वाभाविक ही प्राधान्य मिलता है । सामान्यतया, वियोगावस्था में काव्य का आलम्बन अधिक अनुभूतिशील और हृदयस्पर्शी होने से और संयोगावस्था की बहिरिंद्रियता न रहने के कारण कवि को स्थूल, रूढ़ वर्णनों को छोड़ कर सूक्ष्म मानसिक व्यापारों का वर्णन करना अनिवार्य बन जाता है । [२८] वियोग अर्थात् विप्रलंभ शृंगार के स्वरूप और भेदों का

००००००००

२८ " रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना ", पृ० १७२, डॉ० बच्चनसिंह, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथमावृत्ति, सं० २०१५ वि०

उल्लेख आचार्य विश्वनाथ ने इस प्रकार किया है — [२९] विप्रलम्भ शृंगार में नायक-नायिका में परस्परानुराग तो प्रगाढ़ होता है परंतु परस्पर मिलन नहीं होने पाता । इसके चार भेद हैं : पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण-विप्रलंभ ।

इस प्रकार वियोग-वर्णन का निम्नलिखित शीर्षकों द्वारा अनुशीलन किया जा सकता है :

आ- १ पूर्वराग ; आ- ३ प्रवास ।
आ- २ मान ; आ- ४ करुण विप्रलंभ ।

आचार्य विश्वनाथ ने विप्रलम्भ शृंगार के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि, " जैसे वस्त्रादि के हल्के रंगे होने पर ही रंग चढ़ा करता है, वैसे ही विप्रलंभ के होने पर ही संभोग (संयोग शृंगार) का आनन्द मिला करता है । " [३०] साहित्य के इस महत्त्वपूर्ण रसविशेष की निष्पत्ति कवि की कसौटी बन जाती है । मात्र शास्त्रानुसरण करके कवि विप्रलम्भ के सरस काव्य की रचना नहीं कर सकता । इसके लिये तो कवि का हृदय अनुभूतिशील होना चाहिये, उसमें भी, स्वानुभूति से सुसंस्कृत बने कवि-हृदय की सच्ची, तीव्र और गहरी अनुभूति का आस्वादन सहृदय का श्रेष्ठ काव्यानन्द बन जाता है ।

महाराव लखपतिसिंह के साहित्य में एक ओर " रसतरंग " जैसे नायिका-भेद विषयक ग्रंथ में शास्त्रनिरूपणार्थ वियोग-वर्णन हुआ है

---

२९ " साहित्य-दर्पण", आचार्य विश्वनाथ, पृ० २२२

३० द्रष्टव्य : " न विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टिमश्नुते ।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान रागोविवर्धते ।। "
(" साहित्य-दर्पण ", पृ० २४९)

तो दूसरी ओर " सुरतरंगिनी " और " सदाशिव-ब्याह " में उन्मुक्त वियोग-वर्णन के भी उदाहरण मिलते हैं ।

आ- १ पूर्वराग :

" पूर्वराग का अभिप्राय है रूपसौंदर्यादि के श्रवण ~~से~~ अथवा दर्शन से परस्पर अनुरक्त नायक-नायिका की उस दशा का जो कि उनके समागम के पहले की दशा हुआ करती है । " [३१] पूर्वराग में आलंबन और आश्रय का मिलन अभी तक नहीं हुआ है परंतु गुणश्रवणादि के द्वारा अनुराग अंकुरित हो गया है, इतना ही नहीं इस अवस्था में हृदयगत दुर्बलताओं एवं सामाजिक मर्यादाओं के कारण अनुराग तीव्र से तीव्रतर होता जाता है और मिलन की अभिलाषा तथा तद्गत व्याकुलता विरह की विविध दशाओं को जन्म देती है । इस प्रकार मनोविज्ञान की दृष्टि से पूर्वानुरागिनी नायिका का वियोग-वर्णन अपना निजी काव्यत्व रखता है । नायक को एक बार देख लेने से नायिका में मिलन की उत्कट अभिलाषा जगती है, परंतु यथार्थ में ऐसा होना उसे कठिन दिखाई पड़ता है । प्रिय के जिन गुणों की प्रशंसा सुन कर वह मुग्ध हो गई थी, उन्हीं को वह स्वप्न में देखती है । उसका प्रिय उसे देख रहा है, स्नेह से मुस्करा रहा है, मुख से मृदु बोल कह रहा है, वह उसे सेज पर बैठने को कहती है परंतु इतने में ही उसे नींद आ जाती है । संयोग स्वप्न में भी नहीं है :

" जैसौ सुन्यौ हौं मैं काननि सौं अलि तैसोई देख्यौ मैं राति सयानी ।
नीकी विलोकनि नेह भरी मुसक्याय कही मुख तैं मृदु बानी ।

oooooooo

३१ " साहित्य-दर्पण", आचार्य विश्वनाथ, पृ० २३३

मैं कह्यौ सेज पैं बैठहु मोहन ऐसे मैं आई है नींद अयानी ।
ऐसौ संयोग मिलैगौ कहूं अब मेरे तौ पोर हिये अधिकानी ।। "
(" रसतरंग ", छं० सं० ३२१)

अनुराग-वर्णन के अंतर्गत स्वप्न-दर्शन के उक्त प्रसंग के द्वारा कवि ने मिलन के अभाव में नायिका के दु:खी हृदय की तीव्र मिलनेच्छा को अभिव्यक्त किया है । मिलनेच्छा ही उसको पीड़ित करती है । पूर्व-राग सम्बन्धी ऊपर कही गई बात का यहाँ सुंदर काव्यरूप प्रस्तुत किया गया है । एक अन्य छंद में नायिका के विरह की तीव्रता को लेकर उसकी व्याधि-ग्रस्त, विक्षिप्त-सी अवस्था का वर्णन इस प्रकार किया गया है :

" भूतल तैं तल पतल हूं तैं भूतल मैं तलपति,
ऐसैं वह का कहूं न सुहायौ है ।
घूमति छकी सी ऊमकी सी होति बार बार ।
चितवति चकी सी तन मदन तपायो है ।
कोटि उपचार किये कामिनी सुजीवै क्यौं हूं,
सुधि न सषी की ऐसौ मन ले छिपायो है ।
लाल हरैं हसि आये वा कौ हाल ऐसौ भयौ,
हाला मैं हलाय मानौं हालाहल पायो है ।। "
(" रसतरंग ", छं० सं० २५८) .

नायक के हँस कर देखने मात्र से नायिका की यह अवस्था हो गई है । कवि विरह की गंभीर अनुभूति के स्थान पर नायिका की विह्वलता-जन्य वाह्य क्रियाओं का ही वर्णन कर देते हैं । फिर भी इस छंद में कवि ने " घूमति छकी सी ऊमकी सी " " चितवति चकी सी " में व्याधि आदि संचारियों का बड़ा सुंदर वर्णन किया है । उसमें नाद-सौंदर्य की अच्छी झलक मिलती है । एक अन्य छंद में नायक की विह्वल दशा का

भी कवि ने वर्णन किया है : उसका मुकुट, मुरली, गुंजमाल, फूलमाल, पीतांबर गिर पड़ा है, उसकी देह पर धूल लग गई है, कहीं ग्वाल बाल हैं तो कहीं गैया है । ऐसी विह्वलावस्था उस बेचारे नायक की तब से हो गई है जब से नायिका ने उसको देखा है । [३२] पूर्वानुराग के आलम्बन और आश्रय के ऐसे वियोग-वर्णनों में भावुकता का अतिरेक जितना अधिक है अनुभूति की गंभीरता अपेक्षाकृत न्यून है ।

विरह के असह्य ताप का तथा उसके विविध उपचारों का वर्णन रीतिकालीन काव्य में रूढ़ बन गया था । बिहारी के तद्विषयक ऊहात्मक वर्णन अपना सानी नहीं रखते । महाराव लखपतिसिंह की पूर्वानुरागवती नायिका की विरहज्वाल का यह वर्णन द्रष्टव्य है :

" अटपटी चाल लखि खटपटी लागि गई घनसार,
चंदन क्यौं घसि कैं वरति है ।
सीतल समीर क्यैं चौगनो चलत भार,
अंग ह्वै अंगार पीर टारी न टरति है ।
समभो सयांनी सखी बारबार कहूं कहाय,
यह उपचार मो पैं काहे कौं करति है ।
किरकटी नैंकु परैं पीर नां सही परै री,
नैंननि मैं नाह बसैं नींद क्यौं परति है ।। "
(" रसतरंग ", छं० सं० ३१७)

इस वर्णन को पढ़ने से यह प्रश्न अवश्य उपस्थित होता है कि विरह की अनुभूति की इस ....सीमा तक क्या पूर्वानुरागवती नायिका पहुँच

०००००००

३२ द्रष्टव्य : " रसतरंग ", छं० सं० २५९

सकती है, जिसने अभी तक प्रियसंग का अनुभव ही नहीं किया है ? प्रवास-जन्य-विरह में यह संभव हो सकता है परंतु पूर्वराग के अंतर्गत इस प्रकार का विरह अस्वाभाविक ही प्रतीत होता है । इस सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल जी का मन्तव्य द्रष्टव्य है । [३३] स्पष्ट है कि महाराव लखपति-सिंह ने शास्त्र निरूपण और परंपरा के अनुरोध से ऐसा वर्णन किया है ।

आ- २ : मान :

मान का अर्थ है प्रणय-कोप । संस्कृत काव्य-शास्त्र में मान के दो भेद माने गये हैं : (१) प्रणय-मान और (२) ईर्ष्या-मान । [३४] इन दो भेदों में से प्रणय-मान में नायक-नायिका वियुक्त नहीं होते परंतु कुछ समय के लिये किसी मानसिक दुराव के कारण संयोग-सुख का अनुभव नहीं कर पाते । इसलिये प्रणय-मान को क्षण-स्थायी और निर्हेतुक होने से वियोग के अंतर्गत नहीं माना गया । [३५] लखपतिसिंह ने भी प्रणय-मान को छोड़ कर ईर्ष्या-मान का ही वर्णन किया है । खंडिता

३३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार " पूर्वराग पूर्ण रति नहीं है अतः उस में केवल " अभिलाष " स्वाभाविक जान पड़ता है, - - - - - - जब तक पूर्वराग आगे चलकर पूर्ण रति या प्रेम के रूप में परिणत नहीं होता तब तक उसे हम चित्त की कोई उदात्त या गंभीर वृत्ति नहीं कह सकते । "
(" जायसी ग्रंथावली ", चतुर्थ संस्करण, भूमिका, पृ० ३१)

३४ " साहित्य-दर्पण ", आचार्य विश्वनाथ, पृ० २३९

३५ " हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास ", षष्ठ भाग, पृ० २००

नायिका की मनःस्थिति का यह वर्णन उसके दुःखी हृदय का उचित परिचय देता है :

" सोये हैं स्यामा के संग निसा सुख प्रात भयैं पिय आप हिं आवैं ।
लाल पै जावक ओठनि काजर छाती नख छत की छबि छावैं ।
ऊंचे उसास भरे न सयांनप लोइन मांभिन कछू न लखावैं ।
भारी भरी मुख धोवति पांनी सौं ता महिं आंसू की धार
दुरावैं ।। "
(" रसतरंग", छं० सं० १४१)

ईर्ष्या-मान को लेकर किया गया यह वर्णन नायिका के विरह-जन्य दुःख का परिचय अवश्य देता है । परंतु साथ ही यह विचारणीय है कि प्रेम का दूसरा पक्ष - नायक, जो परस्त्री के प्रति अनुरक्त है, वह नायिका के प्रति एकनिष्ठ प्रेम के अभाव के कारण विरहोचित समान भूमिका उपस्थित नहीं करता । इसलिये ऐसी परिस्थिति में नायिका के हृदय में विरह की गंभीर अनुभूति जगने की अपेक्षा नायक की निष्ठुरता और स्वच्छंदता के प्रति तिरस्कार का भाव जगने की संभावना अधिक है । कदाचित् यही कारण है कि डॉ० नगेन्द्र मान में विरहोचित गंभीरता का अभाव देखते हैं । [३६]

इस प्रकार पूर्वराग और मान के अंतर्गत लछपतिसिंह ने जो विरह-वर्णन किया है वह शास्त्रानुगामी मात्र है । कुछ विद्वानों की दृष्टि से तो विरह के भेदों में पूर्वराग और मान को जो स्थान दिया गया है, वह भी विवादास्पद है । [३७] दोनों ही स्थितियों में वियोग-

oooooooo

३६ " देव और उनकी कविता ", पृ० १०८, डॉ० नगेन्द्र

३७ (अ) " हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास ", षष्ठ अध्याय, पृ० १९८
पृष्ठ लेखक, डॉ० बच्चनसिंह

(आ) डॉ० नगेन्द्र, " देव और उनकी कविता ", पृ० १०७

जन्य दुःख और अवसाद की गंभीरता, स्वाभाविक नहीं आ सकती । पूर्वराग में नायिका के दुःख का कारण उसमें हृदय-धैर्य का अभाव है और मान में प्रेमी युगल का मानसिक वैषम्य । ये दोनों वास्तविक या वस्तुगत वियोग के उदाहरण नहीं होने से तीव्र और गंभीर दुःखानुभूति को निष्पन्न नहीं कर पाते । वियोग की यह पूर्व शर्त अनिवार्य है कि आलम्बन-आश्रय का संयोग होने के पश्चात् उनका किसी कारण वियोग हो तथा यह भी कि दोनों परस्पर मिलने की तीव्र अभिलाषा रखते हों । पूर्वराग और मान में इस शर्त का अभाव है । प्रवास और करुण के अंतर्गत वियोग का वह पुष्ट और गंभीर रूप दिखाई पड़ता है जिस में विरह-जन्य व्याकुलता और दुःखानुभूति की व्यापक और स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है ।

आ- ३ : प्रवास :

" अष्टनायिका " वर्णन के अंतर्गत लखपति ने प्रोषितपतिका और प्रवत्स्यत्पतिका के विरह का तथा उनके विरहताप एवं कृशता ... का वर्णन किया है । प्रिय के परदेस जाने से नायिका का शरीर उसके विरह में क्षीण हो गया है । अपने हृदय में जो दुःख होता है मुग्धा नायिका अपनी सखी से भी नहीं कह पाती । जब जब आँखों के आँसू बरौनी तक आ जाते हैं तब तब वह बिचारी मारे संकोच के उन्हें छिपा लेती है और ये आँसू जलघटिका की कटोरी के जल की तरह अपने पात्र ही में जा ढलते हैं अर्थात् ये आँसू आँखों ही में वापिस मुड़ जाते हैं :

" लाल चले परदेस हिं बाल कौ हाल भयौ तन षीन षरैं ।
जीउ मैं षेद न देत हैं भेद ये बात न कहूं सषी सौं करैं ।

आवत हैं अंसुआ बरुनी लौं संकोच कियें द्रिग मांभिन मुरैं ।
जैसैं चय्यार कटोरिन भरैं जल पेनरि कैं भाजन ही मैं ढरैं ।। "

(" रसतरंग ", छं० सं० १२४)

शोक प्रवाह को हृदय में घुलानेवाली नायिका का यह चित्र विरहावस्था की मार्मिक अभिव्यक्ति लिये हुए है । मुग्धा प्रोषितपतिका की यह मन:स्थिति कवि के हृदय की अनुभूतिशीलता के संप्रेषण का अच्छा माध्यम बन गई है । प्रिय के परदेश चले जाने पर मुग्धा को दुहरे दु:खों को भेलना पड़ रहा है । एक तो संयोग का अभाव है और दूसरे, वह संकोचवश अपनी सखियों के पास भी अपने दु:ख को व्यक्त नहीं कर पाती जिस से कुछ तो दु:ख हल्का हो । वास्तव में यह मार्मिक प्रसंग है जिसके प्रति कवि का सहानुभूतिशील हृदय आकृष्ट हुआ है । इसी कारण वे उसको उचित काव्यात्मक अभिव्यक्ति दे पाये हैं । इसे चित्रोपमता एवं मार्मिक भावाभिव्यक्ति का एक सुन्दर उदाहरण माना जा सकता है ।

अपने हृदय के शोक प्रवाह को हृदय ही में घुला देने वाली नायिका के पश्चात् अब ऐसी नायिका का चित्र प्रस्तुत है जो अपने घनीभूत दु:ख को आँखों से बहाती है ।

" बीछुरि कै मनभावन कै सब सूकै, छुहारा भयौ अलि कौ तन ।
सेमक सुगंध सुहायत नांहिन चित जरावत चंद औ चंदन ।
आय कैं मेघ छये उर आंगनि सीत उपाय करैं हैं सबी जन ।
आंसू कौ पूर चल्यौ है पताल मैं बूडि गये अहि के सहसौं फन ।। "

ऐसी अतिशयोक्तियाँ रीतिकालीन कवियों ने प्राय: की हैं । कवि देव ने अपनी नायिका की आँखों से अविरल अश्रु-प्रवाह के बहने की इस हद तक उक्ति की है कि उसके शरीर के पंच तत्वों में अब जल ही नहीं रहा । [३८]

०००००००

३८ द्रष्टव्य :
" सांसन ही सौं समीर गयो अरु, आंसुन ही सब नीर गयो ढरि । "
" हिंदी रीति साहित्य ", पृ० १७३, काव्य-संग्रह, छं०सं० ३१, सं० डॉ० भगीरथ मिश्र

इस प्रकार की चमत्कारिक अतिशयोक्तियाँ कवि की संवेदना को द्योतन नहीं करतीं । उपर्युक्त छंद में लखपतिसिंह के लिये भी यही कहा जा सकता है ।

रीतिकालीन कवियों ने विरह के ताप का भी अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन किया है, कहीं कहीं ये वर्णन औचित्य की सीमा का भी उल्लंघन कर जाते हैं, जिन्हें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने " खेलवाड के रूप में " माना है । [३९] डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में " रीतिकालीन कवि अनुभूति के विफल हो जाने के कारण ऊहा, अतिशयोक्ति आदि परम्पराभुक्त साधनों के द्वारा ऐसे चित्र उपस्थित करता है जो मज़ाक बन जाते हैं ।" [४०] इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए यदि लखपतिसिंह के साहित्य का मूल्यांकन किया जाय तो यह अवश्य कहा जा सकता है कि वे ऐसे दोषों से प्रायः मुक्त हैं । उदाहरणार्थ, यह छंद उल्लेखनीय है:

" देह दहैं जु वियोग दसा सकुचैं मुगधा अपनी सुधराई ।
और सखी न अजार लखैं उपचार करैं तन कौं सुषदाई ।
येक लटी लषि छूटी मुष प्पर ते उपमा लषधीर दिषाई ।
क्यौं न मिलैं पलकैं पलकैं पल नैननि कौं मनौं पूछन आई ।। "

(" रसतरंग ", छं० सं० १२६)

यह अवश्य है कि इस छंद में कवि ने संवेदनशीलता की अपेक्षा वस्तु-व्यंजक कल्पना-शक्ति का अधिक आधार लिया है, परंतु कवि की यह उक्ति औचित्य की सीमा का उल्लंघन कर के मज़ाक नहीं बनी है ।

विप्रलंभ शृंगार की शास्त्रीय चर्चा के अंतर्गत उसकी दस अवस्थाओं के विवेचन के उदाहरणों में लखपतिसिंह ने विरह-वर्णन की

०००००० ०

३९ " हिंदी साहित्य का इतिहास ", ले० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २७६
प्र० काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सं० १९१९

४० " देव और उनकी कविता ", डॉ० नगेन्द्र, पृ० १०८

परंपरा का निर्वाह किया है । प्राय: व्याधि अवस्था का वर्णन रीतिकालीन कवियों ने विस्तारपूर्वक किया है । [41] मरणदशा का वर्णन नहीं किया जाता । लक्षपतिसिंह ने अन्य अवस्थाओं के साथ मरण को छोड़ कर व्याधि के उपरांत उन्माद का भी वर्णन किया है जिनके एक-एक उदाहरण यहां पर्याप्त होंगे:

व्याधि :

" सेभन सुहाति न षाति न क्यौं हू री,
राति के चंद की कांति लगैं रवि ।
प्रान अधार बिनां घनसार औ हार,
भये विरहानल के हवि ।
वार हिं वार करौ उपचार पैं
कांम की झारनि छार करी छवि ।
सूझत नांहि न छीन पर्यौ तन
जांनति हौं मन या कौं गयौ दवि ।। "
(" रसतरंग ", छं० सं० ४०४)

उन्माद :

" येकु घरी पलिका पर बैठति दूजी घरी उठि बाहिर दौरैं ।
काहू की रोकी रहै नहिं गेह मैं देषति नांहिन ठौर कुठौरैं ।
पांन सौं पीरौ पर्यौ तन पी बिनु बोलति है मुष और औरैं ।
जा छिन तैं द्रिग देषै हैं कान्ह के ता छिन तैं द्रिग मैं विष घोरैं ।।"
(" रसतरंग ", छं० सं० ४०६)

इन छंदों को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि शास्त्र निरूपण के अंतर्गत

oooooooo

४१ " बिहारी ", ले० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ११०

कवि नायिका की विभिन्न विरहावस्थाओं का वर्णन करता गया है । इन में विरह-वर्णन मुक्त रीति से किये जाने की अपेक्षा संतुष्ट नहीं होती । फिर भी, विरह के पूर्वराग और मान के वर्णनों की तुलना में प्रवास-जन्य विरह-वर्णनों में लखपतिसिंह अपेक्षाकृत अधिक सफल हुए हैं । इन वर्णनों में जैसा कि पीछे लक्ष्य किया जा चुका है कवि ने अपनी अनुभूति-प्रवणता का अच्छा परिचय दिया है । रीति-कालीन कवियों के लिये यह प्रसिद्ध है कि उन्हों ने खंडिता के मान आदि के वर्णन में सफलता प्राप्त की है परंतु प्रवास-जन्य विरह-गांभीर्य को वे उतनी सफलता से अभिव्यक्त नहीं कर सके हैं । ४२

इस दृष्टि से देखते हुए यह कहा जा सकता है कि लखपतिसिंह प्रवास-जन्य विरह के गांभीर्य को एक-आध छन्दों में ही सफलतापूर्वक प्रस्तुत कर सके हैं । वर्णन-शैली की रूढ़ परंपरा को छोड़ना उनके लिये असंभव था, अन्यथा उन्मुक्त विरह-वर्णन करने की क्षमता कवि में अवश्य है, इतर वर्णनों के प्रकाश में यह कहना अनुचित नहीं है ।

०००००००

४२ " देव और उनकी कविता ", डॉ० नगेन्द्र, पृ० १०८

निष्कर्ष
०००००

महाराव लखपतिसिंह के साहित्य की प्रधान प्रवृत्तियों में से शृंगारिकता विषयक विवेचन यहाँ समाप्त होता है । संयोग और वियोग शृंगार के जिन अंशों का विवेचन पूर्ववर्ती पृष्ठों पर किया गया है उसके आधार पर यह स्पष्ट होता है कि महाराव लखपतिसिंह की साहित्यिक प्रवृत्तियों में शृंगारिकता की प्रमुखता दिखाई पड़ती है । उनकी प्रायः सभी रचनाओं में संयोग अथवा वियोग में से किसी न किसी एक अथवा दोनों की अभिव्यक्ति अवश्य हुई है । उनकी रचनाओं से संयोग-वियोग के जिन उदाहरणों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है उनके अतिरिक्त ऐसे अन्य अनेक उदाहरण भी देखने को मिलते हैं । उपर्युक्त विवेचन से लखपतिसिंह के साहित्य की शृंगारिक प्रवृत्ति का जो स्वरूप स्पष्ट होता है वह संक्षेप में इस प्रकार है :

(एक) उनकी शृंगारिकता पर रीतिकालीन सौन्दर्य-दृष्टि एवं काव्य शास्त्रीय मानदंडों का पर्याप्त प्रभाव है ; फिर भी ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जिनमें उनकी निजी अनुभूति एवं कल्पना-शक्ति का परिचय मिलता है । अर्थात् शास्त्रीय के साथ-साथ उन्मुक्त शृंगार-वर्णनमें भी वे सफल हो सके हैं ।

(दो) उनकी शृंगारिक अनुभूति में शरीरी प्रेम को भी स्थान मिला है । फिर भी नायिकाओं एवं रागिनियों के मानवीकृत नायिका-रूपों के सुन्दर वर्णनों में कवि का मन सूक्ष्म सौन्दर्य में रमता है । इस सौन्दर्यानुभूति में स्थूलता की अपेक्षा सूक्ष्मता की अधिकता है ।

(तीन) महाराव लखपतिसिंह की शृंगारिक अनुभूति में उतनी गहराई नहीं दिखाई पड़ती कि जिस के आधार पर उसे स्वानुभूतिमूलक कहा जा सके । फिर भी उनकी जीवनी के आधार पर यह

अवश्य कहा जा सकता है कि सौन्दर्य एवं विलास का उन्हों ने प्रत्यक्ष अनुभव भी किया था । इसलिये रीतिकालीन साहित्यिक संस्कारों के साथ साथ जीवन के स्वानुभवों ने भी उनकी शृंगार-दृष्टि के निर्माण में योग दिया है ।

२- आचार्यत्व

चतुर्थ अध्याय के विवेचन के अन्तर्गत हम महाराव लखपति-सिंह के शास्त्रीय ग्रन्थों तथा उनकी उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों का अनुशीलन कर चुके हैं जिस के आधार पर उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष आचार्यत्व अथवा लक्षण ग्रंथकार का रूप भी प्रकाश में आता है । प्रस्तुत अध्याय के आरम्भ में भी इसका संकेत दिया जा चुका है कि उन्हों ने शृंगारिकता के अतिरिक्त समकालीन मुख्य प्रवृत्ति लक्षण ग्रंथों की रचना को अपनाया था । काव्य शास्त्र ही नहीं किन्तु विविध शास्त्रीय विषयों में महाराव लखपति सिंह की निजी अभिरुचि तथा प्रवीणता आदि पर विस्तार के साथ द्वितीय अध्याय में विचार किया जा चुका है । यहाँ पर हमारा उद्देश्य केवल काव्य के अंगों-उपागों या उसके किसी एक के लक्षण-ग्रंथकार के रूप में लखपतिसिंह की उपलब्धियों के अनुशीलन का है । इस दृष्टिकोण से देखा जाय तो इस कोटि में उनकी एक ही रचना " रसतरंग " आती है जिसके रचना-परिमाण, काव्य तथा आधार आदि पर पीछे विचार किया जा चुका है । " रसतरंग " में नायिका-भेद का विवेचन है । इसके अतिरिक्त " सदाशिव-ब्याह " में प्रसंगानुसार काव्य के विविध अंगों-उपागों एवं तद्गत विवेक आदि के संक्षिप्त उल्लेख मात्र आते हैं । अतः लखपतिसिंह के आचार्यत्व का निरूपण केवल उनकी उपर्युक्त नायिका-भेद विषयक कृति के ही आधार पर वस्तुतः सम्भव है ।

नायिका-भेद :
o-o-o-o-o-o

रीतिकाल में यद्यपि काव्य के अनेक पक्षों पर अलग-अलग लक्षण-ग्रंथ लिखे गये हैं किन्तु प्रधानतया नायिका-भेद और अलंकार-ग्रंथों की संख्या शेष की तुलना में अधिक रही है । नायिका-भेद के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि इसका विवेचन रीतिकाल की प्रधान प्रवृत्ति शृंगारिकता के अधिक अनुरूप था अतः उसका अत्यधिक विवेचन स्वाभाविक ही था । वस्तुतः इस युग की मुख्य-प्रवृत्ति शृंगारिकता के आचार्यत्व पक्ष का सर्वप्रधान साधन नायिका-भेद ही हो सकता था । डॉ० नगेन्द्र जी ने इस तथ्य को अपने ग्रन्थ " रीतिकाव्य की भूमिका " में स्वीकार किया है कि केवल शृंगार को मुख्य वर्ण्य-विषय बनानेवाले शास्त्राभिमुख कवियों के लिये नायिका-भेद-वर्णन उसका प्रधान साधन था ।[४३] महाराव लखपतिसिंह का आचार्यत्व इसी कोटि का है जो कि उनकी प्रकृति के अनुरूप ही कहा जायेगा । " रस-तरंग " के आरम्भ में वे अपना उद्देश्य इस प्रकार स्पष्ट कर देते हैं :

" कवि रस ग्रंथ किये जिते, तिते अनूप अपार ।
रस तरंग लखपति स्वत, अपनी मति अनुसार ।।
रस नव पैं सिंगार रस, सरस रसिक रुचि पाय ।
अधिकी या मैं नायिका, सब जनचित्त सुहाय ।। "
(" रसतरंग" छंद संख्या ११ और १२)

उपर्युक्त निर्देश से स्पष्ट है कि रस-रीति-वर्णन की ओर प्रवृत्त महाराव का आचार्यत्व " नायिका-भेद " तक ही सीमित है क्योंकि जैसा कि उन्हों ने स्वयं ही कहा है कि नव रसों में शृंगार श्रेष्ठ है और उसके आलम्बन नायक और नायिका में नायिका अधिक रुचिकर है ।

oooooooo

४३ " रीतिकाव्य की भूमिका ", पृ० १३७

इससे कवि के आचार्यत्व की सीमा स्वयंसिद्ध है ।

चतुर्थ अध्याय के अंतर्गत " रसतरंग " के वर्ण्य विषय के परिचय में हम दृष्टिगत कर चुके हैं कि इस में नायिका के प्रायः सभी परम्परा-प्रसिद्ध भेदों तथा उसकी दूती और सखी के वर्णन के अतिरिक्त शृंगार के अन्य आलम्बन-नायक, उसके सखा, विदूषक, वीर आदि का भी वर्णन किया गया है । नायिका-भेद के निरूपण शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों के सन्दर्भों को लेकर हुआ हैं । संयोग पक्ष में मुख्य आलम्बन रूप में नायिका के अनुभाव, सात्त्विक भाव, स्वभावज अलंकार आदि का सरस एवं चित्रोपम वर्णन कवि ने पूरी सफलता के साथ किया है । इसी प्रकार वियोग शृंगार के अन्तर्गत पूर्वराग, मान, प्रवास आदि का भी वर्णन कवि ने किया है । शृंगार के इन दोनों पक्षों का निरूपण लक्षण-उदाहरण शैली में हुआ है, जो कि रीतिकालीन लक्षण-ग्रंथों की सर्व-सामान्य विशेषता है । लखपतिसिंह ने नायिका की विविध स्थितियों का वर्णन दोहों में और उसका उदाहरण प्रायः सवैयों में प्रस्तुत किया है । इस प्रकार नायिका-भेद विषयक इस ग्रंथ में कवि के उद्देश्य और वर्ण्य-विषय को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों का निरूपण नहीं किया गया है ।

महाराव लखपतिसिंह का नायिका-भेद निरूपण परंपरागत है । पूर्ववर्ती विवेचन से यह स्पष्ट है कि उन्हों ने आचार्य सुंदरदास के " सुंदर शृंगार " के अनुकरण पर " रसतरंग " की रचना की है । हिन्दी के अन्य कवियों की भाँति लखपतिसिंह ने भी नायिका-भेद-निरूपण में निम्नलिखित भेदोपभेदों की चर्चा की है :

(१) नायक के साथ नायिका के सामाजिक सम्बन्धों के आधार

पर : स्वकीया, परकीया और सामान्या ;

(२) अवस्थानुसार : मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा ; मुग्धा के अवान्तर भेदों में अज्ञातयौवना तथा ज्ञातयौवना और नवोढ़ा तथा विश्रब्धनवोढ़ा ;

(३) नायिका के मान अथवा ईर्ष्या-कोप के आधार पर : मध्या और प्रौढ़ा के धीरा, अधीरा और धीराधीरा ;

(४) परकीया के गुप्ता, विदग्धा (वाक्विदग्धा और क्रिया-विदग्धा), लक्षिता, कुलटा, मुदिता और अनुशयना ;

(५) दशानुसार सामान्या के अन्य संभोग दुःखिता, वक्रोक्तिगर्विता (प्रेमगर्विता और रूपगर्विता)

(६) कालानुसार : प्रोषितपतिका, खंडिता, कलहंतरिता, विप्रलब्धा, उत्कंठा, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका, अभिसारिका और प्रवासभर्तृका । पुनः मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया और सामान्या के आधार पर इन-सब के उपभेद ;

(७) प्रकृति के अनुसार : उत्तमा, मध्यमा और अधमा।

(८) जात्यानुसार :पद्मिनी, शंखिनी, ~~हस्तिनी~~ चित्रिनी और हस्तिनी ;

नायिकाओं के उपर्युक्त भेदोपभेदों के निरूपण में लखपतिसिंह ने परंपरा का पूर्णतया पालन किया है । अपनी ओर से नायिका के किसी अन्य भेद की न तो उद्भावना की है न तो परंपरागत भेदोपभेदों को घटाया है । संस्कृत के आचार्य भानुदत्त की

" रसमंजरी " में उपर्युक्त समग्र विभाजन मिल जाता है जिसका अनुसरण हिंदी के अधिकांश कवि-आचार्यों ने किया है । [४४] इस प्रकार लखपतिसिंह के नायिका-भेद में निरूपण की मौलिकता का प्रायः अभाव है । लखपतिसिंह ने नायिका-भेद का निरूपण लक्षण-उदाहरण की परंपरागत शैली में किया है । उनके विवेचन का यह उदाहरण द्रष्टव्य है :

" ।। अथ नवोढा लछनं ।।

लक्षण :

" ब्याह कियो मुगधा पन वे सहिं कहि नवोढ की बात ।
उरपति रति तैं सकुचति डरतैं ज्यौं पारद षिसिजात ।। "

उदाहरण :

" मुष मोरति है दृग जोरै नही रसबात सुहात न यौं चित भोरा ।
पाउ न देत कहूं पलिका पर प्रीति न जानति ऐसी कठोरा ।।
हाथ तैं हाथ छुडावत है बल बाहिर भागति है करिजोरा ।
नायक नेह उपाय दिषावै पैं हाथ तैं जात ज्यौं पारद दौरा ।।"
("रसतरंग", छं०सं० २६ और २७)

नवोढ़ा के लक्षणों को दे कर कवि ने उदाहरण द्वारा उनको सफलतापूर्वक स्पष्ट किया है । ऐसी स्पष्टता प्रायः सर्वत्र पाई जाती है । उदाहरणों में स्पष्टता के साथ साथ काव्यात्मकता भी है ।

oooooooo

४३ द्रष्टव्य : भानुदत्त के नायिका-भेद-निरूपण के लिये " रीति-काव्य की भूमिका ", पृ० १२३ ले० डॉ० नगेन्द्र ।

इतर-काव्य-शास्त्रीय उल्लेख :

" रसतरंग " के अतिरिक्त " सदा-शिव-ब्याह" में भी लखपतिसिंह ने प्रसंगानुसार काव्य-शास्त्रीय उल्लेख मिलते हैं । शांत और शृंगार रस का विरोध, भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी, स्थायी, सात्त्विक भाव एवं अभिनय तथा रस के भेदों सम्बन्धी सामान्य उल्लेख शिव के नृत्य-प्रसंग में किया गया है । इस में गंभीर विवेचन का कोई प्रयत्न नहीं हुआ है और विषय-वस्तु की दृष्टि से यह आवश्यक भी न था । अतः इसे आचार्यत्व की सम्यक् प्रतिष्ठा की दृष्टि से नहीं स्वीकार किया जा सकता ।

निष्कर्ष :

इस प्रकार शृंगारिकता और आचार्यत्व की दो प्रधान रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ महाराव लखपतिसिंह के काव्य में दृष्टिगत होती है । दोनों प्रवृत्तियाँ एक-दूसरे से भिन्न न होकर परस्पराश्रित हैं । लखपतिसिंह के समग्र कृतित्व में शृंगारिकता की प्रवृत्ति व्यापक है । आचार्यत्व के मूल में भी यह प्रवृत्ति प्रमुख रही है । आचार्यत्व की प्रवृत्ति परंपरानुगामी है । अतएव निष्कर्ष रूप में यह कहना उचित ही है कि महाराव लखपतिसिंह के कृतित्व में रीतिकाल की प्रधान एवं व्यापक प्रवृत्ति - शृंगारिकता का ही प्राधान्य है ।

ooo